BAMM(N)-220

भारतीय शास्त्रीय संगीत का सिद्धान्त एंव प्रयोगात्मक–माइनर
तृतीय सेमेस्टर

संगीत–गायन में स्नातक (बी0ए0) माइनर
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

BAMM(N)-220

भारतीय शास्त्रीय संगीत का सिद्धान्त एंव प्रयोगात्मक
संगीत–गायन में स्नातक(बी0ए0) माइनर
तृतीय सेमेस्टर
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी–263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

अध्ययन मंडल समिति

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

संयोजक
निदेशक– मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रो0 पंकजमाला शर्मा (स.)
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय,चंडीगढ़

डॉ0 विजय कृष्ण (स.)
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0मल्लिका बैनर्जी (स.)
संगीत विभाग,
इग्नू, नई दिल्ली

प्रदीप कुमार (स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 जगमोहन परगांई (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रकाश चन्द्र आर्या (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

पाठ्यक्रम संयोजन

प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रकाश चन्द्र आर्या
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

संपादन

डॉ0 जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

इकाई लेखन

1.	डॉ0 वन्दना जोशी	इकाई 1
2.	डॉ0 निर्मला जोशी	इकाई 2
3.	डॉ0 विजय कृष्ण,	इकाई 3
4.	डॉ0 रेखा साह	इकाई 4
5.	डॉ0 जगमोहन परगांई डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा श्री प्रदीप कुमार	इकाई 5
6.	डॉ0 विजय कृष्ण,	इकाई 6

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2024
प्रकाशक : निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल : books@uou.ac.in

नोट– इस पुस्तक की समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराईट संबंधी किसी भी मामले के लिए संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण सत्र न्यायालय–हल्द्वानी अथवा उच्चन्यायालय–नैनीताल में किया जाएगा। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

BAMM(N)-220

संगीत–गायन में स्नातक(बी0ए0) माइनर
तृतीय सेमेस्टर
भारतीय शास्त्रीय संगीत का सिद्धान्त एंव प्रयोगात्मक
BAMM(N)-220

इकाई 1– नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादि राग, उतरान्गवादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग पृष्ठ 1–12

इकाई 2– पं0 विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर स्वरलिपि पद्धति का परिचय एवं भातखण्डे पद्धति से तुलना; । पृष्ठ 13–17

इकाई 3– ताल के दस प्राणों का संक्षिप्त अध्ययन। पृष्ठ 18–32

इकाई 4– संगीत संबंधी विषयों पर निबन्ध लेखन। पृष्ठ 33–40

इकाई 5– पाठ्यक्रम के रागों भूपाली एवं बिलावल का परिचय, स्वर विस्तार एवं स्वर समूह के माध्यम से राग पहचानना तथा उनमें छोटा ख्याल/रज़ाखानी गत को तानों/तोड़ों सहित लिपिबद्व करना । पृष्ठ 41–54

इकाई 6– पाठ्यक्रम की तालों एकताल एवं कहरवा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वरा पहचानना तथा उनके ठेके को दुगुन एवं चौगुन लयकारी सहित लिपिबद्ध करना। पृष्ठ 55–64

इकाई 1 – नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादि राग, उतरान्गवादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्द
- 1.3.1 नाद
- 1.3.2 ग्राम
- 1.3.3 मूर्च्छना
- 1.3.4 जाति गायन
- 1.3.5 निबद्ध गान
- 1.3.6 अनिबद्ध गान
- 1.3.7 शुद्ध राग
- 1.3.8 छायालग राग
- 1.3.9 संकीर्ण राग
- 1.3.10 पूर्वान्गवादि राग
- 1.3.11 उतरान्गवादि राग
- 1.3.12 परमेल प्रवेशक राग
- 1.3.13 संधि प्रकाश राग

1.4 सारांश
1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–220) के तृतीय सेमेमस्टर की प्रथम इकाई है। इस इकाई में भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों जैसे नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादिराग, उतरान्गवादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग को विस्तार से समझाया गया है। इन शब्दावलियों के माध्यम से हमें संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष को समझ पाने में सरलता होगी।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों जैसे नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादिराग, उतरान्गवादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग को समझ चुके होंगे। इन शब्दों को समझने के पश्चात आपको संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष को समझ पाने में आसानी होगी।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों को समझ सकेंगे।
- संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष को समझ पाने में आसानी होगी।
- इन मूलभूत शब्दों व इनके अन्तर को समझ कर, अपने गायन अथवा वादन में इनका सही प्रयोग कर सकेंगे।

1.3 भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्द

1.3.1 नाद – संगीतोपयोगी ध्वनि को 'नाद' कहते हैं। संगीत शास्त्रियों ने नाद को 'ब्रह्म' की संज्ञा दी है। नाद से ही संगीत के मूल आधार 'स्वर' की उत्पत्ति मानी गयी है। संगीत की मूल सम्पत्ति नाद को ही माना गया है। साधारणतया हम देखते हैं कि किसी भी वस्तु से ध्वनि तभी उत्पन्न होती है, जबकि उसमें किसी प्रकार का कम्पन्न या आन्दोलन होगा। यदि ये कम्पन्न या आन्दोलन नियमित रूप से हो, तब इससे उत्पन्न ध्वनि का उपयोग संगीत के लिए किया जा सकता है। परन्तु सभी प्रकार के आन्दोलनों से उत्पन्न ध्वनि संगीत के लिए कभी उपयोगी नहीं हो सकती हैं तथा जो ध्वनि संगीत हेतु महत्वपूर्ण या उपयोगी न हो, उसे हम शोर या कोलाहल की संज्ञा दे सकते हैं। नाद से ही स्वर की उत्पत्ति मानी गयी है।

एक निश्चित गति तथा नियमित रूप से आन्दोलित ध्वनि, संगीतोपयोगी ध्वनि सिद्ध हो सकती है। नाद की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. **नाद का ऊँचा नीचापन** – उदाहरणार्थ हम दो भिन्न–भिन्न नादों में ऊँचापन तथा नीचापन अंकन करेंगे। जिस नाद की कंपन संख्या कम होगी उसे हम 'नीचा नाद' कहेंगे तथा जिस नाद की कंपन–संख्या अधिक होगी उसे हम ऊँचा नाद कहेंगे। अर्थात यदि एक स्वर (नाद) की कंपन संख्या 100 आन्दोलन प्रति सेकेन्ड है तथा दूसरे स्वर (नाद) की कम्पन संख्या 150 आन्दोलन प्रति सेकेन्ड होगी तो हमें ऐसा मान लेना चाहिये कि 100 आन्दोलन संख्या वाला नाद नीचा है तथा 150 आन्दोलन संख्या वाला नाद ऊँचा है। हम स्वरों के चढ़ते हुए क्रम तथा उतरते हुए क्रम से भी इसे भली भाँति समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ – सा रे ग म प ध नी सां

अर्थात स्वरों के चढ़ते हुए क्रम में नाद हमेशा ऊँचा होता जाएगा तथा स्वरों के उतरते हुए क्रम में (अवरोहात्मक स्वरूप में) नाद सदैव नीचा होता जाएगा। जैसे – सां नी ध प म ग रे सा। यही नाद का ऊँचा–नीचापन है। उपरोक्त उदाहरण से आप भली–भाँति जान गए होंगे कि नाद की प्रथम विशेषता क्या है? नाद का ऊँचा नीचापन किसे कहते हैं?

2. **नाद का छोटा बड़ापन** – आप जानते होंगे कि यदि तानपुरे या सितार के तार को हम धीमे से छेड़ते हैं तो उसमें से बहुत बारीक, हल्की तथा समीप तक सुनायी देने वाली ध्वनि सुनायी देती है। इसके विपरीत यदि हम तानपुरे या सितार के तार को जोर से छेड़ते हैं तो उसमें से तेज ध्वनि तथा अधिक दूरी तक सुनायी देने वाली ध्वनि निकलती है। यही नाद का छोटा–बड़ापन कहलाता है। जो नाद(ध्वनि) कम दूरी तक सुनाई देगा, वह छोटा नाद कहलाएगा तथा नाद(ध्वनि) अधिक दूरी तक सुनायी देगा वह बड़ा नाद कहलाएगा। अब आप परिचित हो चुके होंगे कि नाद का छोटा या बड़ापन क्या होता है?

3. **नाद की जाति एवं गुण** – सम्भवतया आप परिचित होंगे कि प्रत्येक नाद की अपनी एक पृथक जाति, गुण अथवा विशेषता होती है। हम अनुभव करते हैं कि तानपुरे की ध्वनि सितार से भिन्न होती है। वायलिन की ध्वनि सरोद से भिन्न होती है, आदि–आदि। हम किसी भी वाद्य की ध्वनि को सुनते ही जान जाते हैं कि अमुक ध्वनि किस वाद्य से उत्पन्न हुई है। हम जिस विशेषता के कारण, बिना देखे ही, सुनने मात्र से पहचान जाते हैं कि यह ध्वनि किस वस्तु से अथवा किस वाद्य से उत्पन्न हो रही है, उस विशेषता को ही नाद की जाति एवं गुण कहते हैं।

उपरोक्त से आप भली भाँति समझ गये होंगे कि नाद की जाति एवं गुण क्या–क्या हैं? इसके अतिरिक्त नाद का काल भी महत्वपूर्ण विषय है। आप जानते होंगे कि संगीत में प्रयोग किए जाने वाले प्रत्येक नाद का काल निश्चित होता है। नाद के काल के आधार पर ही माप कर संगीत में विभिन्न लय बनायी जाती हैं। संगीत शास्त्र में एक मात्रा से दूसरी मात्रा तक के काल को नाद का काल कहा गया है।

उपरोक्त विशेषताओं के अध्ययन से आप भली प्रकार जान गए होंगे कि नाद क्या है? संगीत में नाद का क्या महत्व है? नाद की मूलभूत विशेषताएं कौन–कौन सी हैं?

सर्वप्रथम मतंग ने 'बृहद्देशी' नामक ग्रन्थ में नाद के विषय की विवेचना की है तथा कहा है कि –

ना नादेन बिना गीतं, न नादेन बिना स्वराः।
ना नादेन बिना नृतं, तस्मान्नादात्मकं जगत ।।

अर्थात नाद के बिना न गीत संभव है न ही स्वर और न ही नृत्य संभव है। अतः सारा संसार ही नादात्मक है।

मतंग के अनुसार नाद की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि – वास्तव में नाद और ध्वनि संगीत के उद्गम हैं। नाद शब्द जिन दो वर्णों से मिलकर बना है वह है– 'न' और 'द'। ग्रन्थों के अनुसार इनमें नकार 'प्राणत्व'(वायु) का द्योतक है और 'दकार' अग्नि तत्व का सूचक है। अतः प्राण और अग्नि के संयोग से जिसकी उत्पत्ति होती है, वही 'नाद' रूप है।

उपरोक्त कथनों से आप नाद से भली–भाँति परिचित हो गए होंगे कि नाद क्या है, ये किन दो वर्णों से मिलकर बना है इसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है?

संगीत शास्त्रियों ने नाद तथा ब्रह्म की एकता को स्वीकार किया है। अतः संगीत–ग्रन्थों जैसे– संगीत रत्नाकर, संगीतराज, संगीत मकरन्द, आदि में नाद को ही ब्रह्म शब्द से सम्बोधित कर मंगलाचरण किया गया है। नाद का अर्थ अव्यक्त ध्वनि है।

अलंकार कौस्तुभ के द्वितीय स्तबक में बताया गया है कि नाभिदेश के उर्ध्व भाग में स्थित हृदयस्थान से ब्रह्मरन्धान्त में प्राणसंज्ञक वायु शब्द को उत्पन्न करता है। उसी शब्द को 'नाद' कहते हैं। भरत ने नाट्य शास्त्र में पारिभाषिक रूप से नाद का कुछ विशेष उल्लेख नहीं किया है किन्तु शब्द तत्व के दो रूपों का उल्लेख 'स्वरवान' और 'अभिधानवान' कहकर सांगीतिक शब्द के महत्व को स्वीकार किया है। स्वरवान का अर्थ है ऐसा शब्द जो अपने में पूर्ण हो। अभिधानवान का अर्थ है ऐसा शब्द जो किसी चीज या वस्तु विशेष का बोध कराए। अतः जितनी भी भाषाएं हैं वे सब अभिधानवान कही गयी हैं। इसे मतंग ने क्रमशः नादात्मक और वर्णनात्मक कहा है।

"नकारं प्राणनामानं नादोऽभिधीयते" – प्रस्तुत श्लोक द्वारा संगीतरत्नाकर नामक ग्रन्थ में नाद के अर्थ को स्पष्ट किया गया है। इस ग्रन्थ में नाद के प्रमुख दो भेदों(आहत तथा अनाहत नाद) का भी उल्लेख मिलता है तथा नाद के तीन गुण धर्म भी बतलाए हैं। मतंग के अनुसार नाद के सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, व्यक्त, अव्यक्त तथा कृत्रिम पाँच प्रकार माने गए हैं।

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते।
सोऽयं प्रकाशते पिण्डे तस्मातपिण्डोऽभिधीयते।।

अर्थात संगीत रत्नाकर में नाद के दो रूप माने गए हैं – 1. आहत नाद 2. अनाहत नाद। आहत का अर्थ है आघात द्वारा। अतः जो नाद आघात करने से उत्पन्न होता है वह 'आहत नाद' कहलाता है तथा जो नाद बिना आघात के ही उत्पन्न होता है वह 'अनाहत नाद' कहलाता है। आहतनाद संगीतोपयोगी नाद कहलाता है इसके दो प्रकार कहे जा सकते हैं।

1. स्वाभाविक, जो कंठ से उत्पन्न हो।
2. यान्त्रिक, जो किसी कृत्रिम वस्तु के आघात या घर्षण द्वारा उत्पन्न हो। यह ध्वनि वाद्य संगीत में प्रयुक्त होती है, अर्थात तन्त्री वाद्यों के तार छेड़ने पर, अवनद्ध वाद्यों पर हाथ की थाप मारने पर या सुषिर वाद्यों में फूंक मारने पर यह नाद उत्पन्न होता है। संगीत का सम्बन्ध इसी नाद से होता है। मतंग के अनुसार ये पाँच प्रकार के होते हैं–सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, व्यक्त, अव्यक्त तथा कृत्रिम। जो क्रमशः गुह्य, हृदय, कंठ, तालु तथा मुख से उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार आप जान गए होंगे कि आहत नाद ही संगीत में प्रयुक्त होने वाला नाद है। यदि हम व्यापक अर्थ में लें तो इसका यह अर्थ होगा कि किसी चीज के भी टकराने से जो ध्वनि उत्पन्न हो, वही आहत नाद है। बिना आघात के उत्पन्न होने वाला 'अनाहत नाद' केवल योगीजन ही सुनकर समझ सकते हैं तथा वे उसी के द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं। मन तथा बुद्धि की साम्यावस्था की स्थिति में ही वह सुना जा सकता है। यौगिक क्रियाओं से मन, बुद्धि एक विशेष अवस्था में पहुँच जाते हैं, तभी अनाहत नाद ध्यानमग्न योगीजन को अनुभव होता है। केवल अनासक्त योगी ही साधना के पश्चात् अनाहत नाद को सुन सकता है अथवा अनुभव कर सकता है। स्पष्ट है कि जो ध्वनि निरन्तर बिना किसी आघात के शरीर के भीतर सुनायी दे, वही 'अनाहत नाद' कहलाता है।

आप भली–भाँति आहत तथा अनाहत नाद के विषय में परिचित हो गए होंगे। नाद कितने प्रकार के होते हैं? संगीत के लिए आहत तथा अनाहत दोनों नादों में से उपयोगी कौन सा नाद है, यह भी जान गए होंगे। आपको ज्ञात होना अति आवश्यक है कि तानपुरे से उत्पन्न वे नाद, जिनसे तारों को मिलाया जाता है, वे मूल नाद कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य नाद मूलनाद की सहायता में उत्पन्न होते हैं वे "सहायक नाद" कहलाते हैं। सहायक नादों को 'स्वयंभू–स्वर' भी कहते हैं क्योंकि ये स्वतः ही पैदा होते हैं। विद्वानों के कथनानुसार प्रत्येक वाद्य में मूलनाद के अतिरिक्त कुछ अन्य सूक्ष्मनाद भी उत्पन्न होते हैं। जिन्हें सहायक नाद या "स्वयंभू स्वर" कहते हैं। स्वयंभू नादों को 'ओवरटोन्स' या "हारमोनिक्स" भी कहते हैं।

सहायक नादों की संख्या उनके उत्पन्न होने का क्रम तथा प्राबल्य प्रत्येक वाद्य प्रकार में एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। जैसे तानपुरे के सहायक नाद वायलिन, सरोद, बांसुरी अथवा तबला से भिन्न होते हैं। सहायक नादों को ठीक से सुनने के लिए विशेष अनुभवी कर्णों की आवश्यकता होती है क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। सहायक नाद मूलनाद से दुगुने, तिगुने, चौगुने, पंचगुने, छगुने, अर्थात वैज्ञानिक क्रम में मूल स्वर से 2 : 3 : 4 : 5 : 6 आदि के अनुपात से उत्पन्न होते हैं।

अब आपने जान गए होंगे कि मूल नादों के अतिरिक्त अन्य जो नाद होते हैं, उनको किस नाम से पुकारा जा सकता है? सहायक नाद किसे कहते हैं तथा उनकी उत्पत्ति वैज्ञानिक क्रम में मूल स्वर से कितने–कितने अनुपात से, उत्पन्न होती है? इस प्रकार ज्ञात होता है कि नाद की समस्त विशेषताओं की साधना निरन्तर अभ्यास द्वारा की जा सकती है। नाद की मधुरता के अभाव में संगीत नीरस तथा निर्जीव हो जाता है।

1.3.2 ग्राम – ग्राम का वास्तविक अर्थ है 'समूह'। प्राचीन संगीत में 'ग्राम' का प्रचलन था। संगीत में निश्चित श्रुत्यांतरों पर स्थापित सात स्वरों के समूह को ग्राम कहते थे। सात स्वरों के सप्तक को बाईस श्रुतियों पर भिन्न–भिन्न प्रकार से स्थापित करने को ग्राम कहते हैं। यदि हम "चतुश्चतुश्चतुश्चैव षडजमध्यमपंचम" के सिद्धान्त से बाईस श्रुतियों पर सात स्वरों की स्थापना करें तो एक ग्राम बन जाता है। अर्थात सात स्वरों को निश्चित श्रुतियों पर स्थापित करने को 'ग्राम' कहते हैं। नारदीय शिक्षा नामक ग्रन्थ में नारद ने तीन प्रकार के ग्रामों का उल्लेख किया है –

(1) षडज ग्राम (2) मध्यम ग्राम (3) गान्धार ग्राम।

भरत ने केवल षडज तथा मध्यम ग्राम का ही उल्लेख किया है। मतंग के अनुसार तीसरा ग्राम अर्थात गन्धार ग्राम स्वर्ग स्थित बताया गया है, जिसका आजकल लोप हो चुका है।

शारंगदेव के अनुसार ग्राम की व्याख्या इस प्रकार दी गयी है– 'ग्राम स्वर समूहः स्यान्मूर्च्छनाऽऽदेः समाश्रयः।' अर्थात ग्राम स्वरों का वह समूह है, जो मूर्च्छनाओं का आश्रय है।

उपरोक्त बातों से आप परिचित हो गए होंगे कि 'ग्राम' किसे कहते हैं, यह कितने प्रकार के होते हैं।

अब हम षडजग्राम की विवेचना करेंगे। यदि हम सप्तक के सात स्वरों को बाईस श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित करें कि सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–13वीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाइसवीं श्रुति पर हो, तो "षडज ग्राम" की स्थापना होगी।

षडज ग्राम के स्वरों में से यदि केवल पंचम स्वर की एक श्रुति कम पर स्थापित हो तो 'मध्यम ग्राम' बनेगा। मध्यम ग्राम की विशेषता होती है कि इसे मध्यम स्वर से ही प्रारम्भ किया जाता है। इस ग्राम में मध्यम स्वर को सा मानकर गाया बजाया जाता है। इसको सरल रूप में यदि कहा जाएगा तो ऐसा भी कह सकते हैं कि षडजग्राम का पंचम जो कि सत्रहवीं श्रुति पर है, उसे सोलहवीं श्रुति पर कर दिया जाए तो मध्यम ग्राम की स्थापना हो जाएगी। यदि मध्यम ग्राम को मध्यम स्वर से आरम्भ किया जाए तो श्रुतियों के अन्तर इस प्रकार होंगे– 2, 3, 4, 2, 3, 2, अर्थात् म में 4, प में 3, ध में 4, नि में 2, सा में 4, रे में 3 तथा ग में 2 श्रुतियां होंगी। उल्लेखनीय है कि मध्यम ग्राम का प्रचार प्राचीन काल में था, जो मध्यकाल में आकर प्रचार से हट गया है।

गन्धार ग्राम का लोप प्राचीनकाल से ही होने लगा था। विद्वानों के मतानुसार प्राचीन काल में निषाद ग्राम प्रचलित था जिसे गन्धर्व लोग गाया करते थे। बाद में इसी निषाद ग्राम का नाम गन्धार ग्राम पड़ा। आधुनिक काल में ऊपर वर्णित तीनों ग्रामों में से केवल षडज ग्राम ही प्रचार में है।

उपरोक्त अध्याय से आप भली–भाँति परिचित हो गए होंगे कि षडज ग्राम में सा को किस श्रुति पर स्थापित किया गया था, षडज ग्राम के स्वरों में से किस स्वर की एक श्रुति कम स्थापित की जाए जिससे मध्यम ग्राम बनेगा, गन्धार ग्राम किस समय में प्रचार में था तथा इसको कौन लोग गाया करते थे।

इस विवेचना से आप जान गए होंगे कि ग्राम क्या है तथा इसमें क्या–क्या विशेष है तथा ग्राम से ही मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति हई है।

1.3.3 मूर्च्छना – निश्चित श्रुतियों के अन्तरों पर स्थापित सात स्वरों के समूह को ग्राम कहते हैं तथा ग्राम के किसी भी स्वर को आधार मानकर, उसके स्वरों पर क्रमिक, आरोह, अवरोह करने को "मूर्च्छना" कहते हैं। प्राचीन काल में ग्रामों से ही मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति की जाती थी। एक ग्राम के सात स्वरों का बारी–बारी से प्रत्येक को षडज मानकर आरोह–अवरोह करने से विभिन्न मूर्च्छनाऐं बना करती थीं। उदाहरणार्थ, षडज ग्राम के प्रत्येक स्वर को एक–एक करके षडज माना जाए और फिर उसका आरोहावरोह किया जाए अर्थात् पहली मूर्च्छना षडज ग्राम से आरम्भ होकर आरोहवारोह करने पर षडज ग्राम के स्वरों की तरह होगी। प्राचीन ग्रन्थकारों ने स्वर को उसकी अन्तिम श्रुतियों पर स्थापित माना है। दूसरी मूर्च्छना मन्द निषाद को षडज मानकर आरोहावरोह करने से बनेगी। तीसरी मूर्च्छना मन्द्र धैवत को षडज मानकर आरोहावरोह करने पर बनेगी। इसी प्रकार क्रमशः मन्द्र पंचम, मध्यम, गन्धार, रिषभ स्वरों को सा मानकर आरोहावरोह करने पर अन्य मूर्च्छनाएं भी बनती जाएंगी। तीन ग्रामों से प्रत्येक सात–सात(अर्थात् 21) मूर्च्छनाएं बनती हैं।

चूँकि गन्धार ग्राम का लोप था अतः केवल (7+7=14) चौदह की मूर्च्छनाएं प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार मानी गयी हैं। रागों के स्थान पर प्राचीन समय में जातियां गायी जाती थीं और यह जातियां मूर्च्छनाओं से उत्पन्न होती थी। रागों का प्रचार बढ़ने से 'थाट' शब्द का बहुतायत से प्रयोग होने लगा, अब रागों की उत्पत्ति 'थाट' से मानी जाने लगी है। उपरोक्त वर्णन से मूर्च्छना किसे कहते हैं तथा पहली मूर्च्छना किस ग्राम से उत्पन्न होती है, आप भली–भाँति परिचित हो गए होंगे। आप जान गए होंगे कि षडज ग्राम के सातों स्वर 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2, श्रुतियों की दूरी पर स्थित होते हैं। अतः पहली मूर्च्छना षडज से ही प्रारम्भ होगी। अतः इसके अनुसार चौथी पर सा, सातवीं पर रे, नवीं पर ग, तेरहवीं पर म, सत्रहवीं पर प, बीसवीं पर ध तथा बाईसवीं श्रुति पर नि आएगा।

अतः गन्धार व निषाद अपने पिछले स्वर रिषभ और धैवत से क्रमशः 2–2 श्रति ऊँचे होंगे। हम देखेंगे कि ये दोनों ही स्वर कोमल हो जाएंगे तथा यह मूर्च्छना काफी थाट के समान होगी। इसी प्रकार दूसरी मूर्च्छना में हम मन्द्र नि को सा मानकर षडज ग्राम के स्वरों पर क्रमिक आरोह–अवरोह करेंगे, तो ये सातों स्वर क्रमशः 2, 4, 3, 2, 4, 4 और 3 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे। यह बिलावल थाट के समान ही होगा।

तीसरी मूर्च्छना में हम मन्द्र धैवत को सा मानेंगे व आरोह अवरोह करेंगे। इससे आपको ज्ञात होगा कि सातों स्वर 3, 2, 4, 3, 2, 4 और 4 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे। अतः यहाँ पर रे कोमल तथा पंचम तीव्र मध्यम हो जायेगा। इस मूर्च्छना में रे ग ध व नि स्वर कोमल तथा दोनों मध्यम व पंचम वर्ज्य होने से यह मूर्च्छना किसी भी थाट के समान न होगी।

चौथी मूर्च्छना मन्द्र पंचम से प्रारम्भ होगी अतः इसके सातों स्वर 4, 3, 2, 4, 3, 2 और 4 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे। यह मूर्च्छना आसावरी थाट के समान होगी क्योंकि इसके गन्धार धैवत व निषाद कोमल हो जाएंगे। इसी प्रकार आप जान जाएंगे, कि पाँचवीं मूर्च्छना मन्द्र के माध्यम से आरम्भ होने पर सातों स्वर क्रमशः 4, 4, 3, 2, 4, 3 व 2 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे। इसमें केवल निषाद कोमल होगा यह मूर्च्छना खमाज थाट के समान मानी जाएगी।

छठी मूर्च्छना मन्द्र ग से शुरू होगी। उसके स्वर 2, 4, 4, 3, 2, 4, 3 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे जो कि कल्याण थाट के समान प्रतीत होगा।

अन्त में हम देखेंगे कि सातवीं मूर्च्छना मन्द्र रिषभ से प्रारम्भ होगी। उसके सातों स्वर क्रमशः 3 2 4 4 3 2 तथा 4 श्रुतियों के अन्तर पर होने के कारण इसमें रे, ग ध, नि स्वर कोमल होंगे। यह मूर्च्छना उत्तर भारतीय भैरव थाट के समान होगी।

षडज ग्राम की मूर्च्छना से उत्तर भारतीय अलग–अलग थाटों की संरचना हुई है। इसी प्रकार मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएं भी ज्ञात की जा सकती हैं। मध्यम ग्राम से भी इसी प्रकार सात मूर्च्छनाएं बन सकती हैं।

आप उपरोक्त विवेचना से भली–भाँति जान गए होंगे कि भिन्न–भिन्न मूर्च्छनाओं को, भिन्न–भिन्न स्वरों से प्रारम्भ करने से विविध थाटों की उत्पत्ति भी होती जा रही है। आप यह जान चुके होंगे कि पहली मूर्च्छना षडज से प्रारम्भ होने पर क्रमशः स रे ग म प ध तथा नि स्वर कौन–कौन सी श्रुतियों पर स्थापित होंगे तथा यह मूर्च्छना किस थाट के समान होगी।

प्रस्तुत अध्याय के माध्यम से हमने मूर्च्छनाओं के विषय में ज्ञान प्राप्त किया है। मूर्च्छनाऐं हमें विभिन्न स्वर सप्तकों की प्राप्ति कराती हैं। प्रत्येक मूर्च्छना के आरम्भिक स्वर का वही महत्व एवं स्थान है, जो मेल सिद्धान्त में 'सा' का है। मूर्च्छना और मेल में एक प्रमुख अन्तर यह है कि जाति या रागों के नाम के आधार पर मूर्च्छना स्थिर नहीं की गयी, जबकि मेल (थाट) में यही व्यवस्था रही है।

उपरोक्त से आप मूर्च्छना के विषय में भली–भाँति परिचित हो गए होंगे।

1.3.4 निबद्ध गान – जो गायन ताल में पूरी तरह बद्ध हो, अर्थात ताल में बंधी हुई रचनाओं को निबद्ध गान कहते हैं। प्राचीन काल में निबद्ध गान के अन्तर्गत प्रबन्ध वस्तु, रूपक आदि गायनों का प्रकार प्रचलित होता था, परन्तु आधुनिक काल में निबद्ध गान के अन्तर्गत गीत के निम्नलिखित प्रकार, जिन्हें ताल में बाँधकर गाया–बजाया जाता है, वे निबन्ध गान के अन्तर्गत आते हैं।

ख्याल – ख्याल एक प्रकार का प्रसिद्ध निबद्ध गान है। 'ख्याल' जैसा कि आपको ज्ञात होगा कि यह उर्दू का शब्द है। इसका अर्थ है– 'कल्पना।' अर्थात यह गीत का वह प्रकार है जिसमें गायक गीत के बोलों को लेकर, उसमें कण, मुर्की, खटका, मींड, गमक, आलाप, तान का खुलकर सुन्दरतापूर्वक प्रयोग करता है। ख्याल मुख्यतः दो प्रकार के माने जाते हैं – (1) विलम्बित या बड़ा ख्याल (2) द्रुत या छोटा ख्याल। जो ख्याल धीमी–धीमी गति में गाया जाता है उसे बड़ा ख्याल या विलम्बित ख्याल कहते हैं तथा जो ख्याल तेज गति में गाए जाते हैं उन्हें द्रुत ख्याल या छोटा ख्याल कहते हैं। ख्याल मुख्यतः एकताल, तीनताल, झूमरा, तिलवाड़ा, आडा चारताल आदि तालों में निबद्ध करके गाए जाते हैं। जौनपुर के मुहम्मद हुसैन शर्की 'ख्याल' के आविष्कारक व प्रचारक माने जाते हैं। आप परिचित हो गए होंगे कि ख्याल का शाब्दिक अर्थ क्या है तथा ख्याल के मुख्य कौन–कौन से प्रकार हैं।

ध्रुपद – ध्रुपद के आविष्कारक(पन्द्रहवीं शताब्दी) ग्वालियर के राजा मान सिंह तोमर को माना जाता है। ध्रुपद एक मर्दाना निबद्ध गान है। प्राचीन काल में इसके चार भाग होते थे–स्थायी, अन्तरा, संचारी तथा आभोग। परन्तु आधुनिक काल में इसे दो भागों में ही गाने का प्रचलन है– स्थायी तथा अन्तरा। इस गायन शैली में तानों का प्रयोग नहीं किया जाता है तथा इसके स्थान पर प्रायः नोम्–तोम् का आलाप किया जाता है। ध्रुपद के लिए भारी आवाज वाले गायक विशेष रूप से उत्तम माने होते हैं। ध्रुपद के लिए चारताल अधिक उपयुक्त होती है। प्राचीन काल में ध्रुपद हेतु पखावज की संगत की जाती थी परन्तु आजकल पखावज का स्थान तबले ने ले लिया है। ध्रुपद एक गंभीर प्रकृति का गान है। ध्रुपद में विभिन्न लयकारियों का प्रयोग किया जाता है।

धमार – धमार की गायन शैली निबद्ध गान के अन्तर्गत आती है। इस गान में राधा–कृष्ण की होली का अधिकतर चित्रण मिलता है। धमार धमार ताल में गायी जाती है जिसमें चौदह मात्राएं होती हैं। इसमें ध्रुपद के ही समान अनेक लयकारियां दिखलायी जाती हैं। जैसे दुगुन, तिगुन, चौगुन, अठगुन आदि।

उपरोक्त वर्णन से आप भली प्रकार जान गए होंगे कि ध्रुपद तथा धमार में क्या–क्या विशेष है तथा क्या मुख्य अन्तर हैं।

ठुमरी – ठुमरी श्रृंगार रस की रचना है। यह भी एक प्रकार का निबद्ध गान कहलाता है। इसको टप्पे की तरह उन्हीं रागों में गाते हैं, जिनमें अन्य रागों का मिश्रण सरलता से हो सके। ठुमरी अधिकांशतः

जतताल, दीपचन्दी, तीनताल आदि तालों में गायी जाती है। ठुमरी गायन में अनेक प्रान्तों की छाया पड़ती है। बनारस, लखनऊ, महाराष्ट्र, पंजाब, दिल्ली आदि की ठुमरियां अत्यन्त प्रचलित होती हैं।

टप्पा – टप्पा के आविष्कारक शोरी मियां नामक संगीतज्ञ माने गए हैं। यह एक प्रकार का पंजाबी बोल वाला, निबद्ध गान है। इसकी तानें बहुत लम्बी, दानेदार अथवा पेंचदार होती हैं। इसे पीलू, काफी, भैरवी, खमाज आदि रागों में गाया जाता है। इसकी रचनाऐं श्रृंगाररस प्रधान होती हैं।

त्रिवट तथा चतुरंग – जब ताल में प्रयुक्त होने वाले बोलों को किसी राग के स्वरों पर, इच्छित ताल के साथ गाया जाता है। तो वह त्रिवट कहलाता है।

जब गीत के साहित्य की स्थायी में चार पंक्तियां हों और एक पंक्ति में साहित्य हो, दूसरी में सरगम हो, तीसरी में तराने के बोल तथा चौथी पंक्ति में तबले के पटाक्षर हों तो यह रचना चतुरंग कहलाती है।

तराना – तराना में तोम, नोम, तनन, देरे ना, दानी, दिर–दिर आदि निरर्थक शब्दों को गाया जाता है। किसी भी राग के छोटे ख्याल को गाने के बाद इसको, किसी भी ताल में निबद्ध करके गाया जाता है। इसमें विशेषकर तीनताल का प्रयोग होता है। प्रायः यह द्रुतलय के बाद धीरे–धीरे अतिद्रुतलय में गाया जाता है।

भजन – ईश स्तुति परक रचनाएं, जिन्हें तीनताल, कहरवा, दादरा, रूपक आदि ताल में गाया जाता है, भजन कहलाते हैं। भजन में आलाप, तान आदि का प्रयोग नहीं किया जाता है। आवश्यकतानुसार मींड, खटका, कण, मुर्की आदि का प्रयोग किया जाता है। यह एक निबद्ध गान है।

आप अच्छी तरह से जान गए होंगे कि निबद्ध गान किसे कहते हैं तथा इस गान के कितने प्रकार होते हैं।

1.3.5 अनिबद्ध गान – जो गायन बिना ताल के गाया अथवा बजाया जाता है अनिबद्ध–गान कहलाता है। प्राचीन काल में अनिबद्ध गान के प्रकार रागालाप, रूपकालाप, आलप्तिगान आदि प्रचलित थे। आधुनिक काल में राग में आलाप–गायन को अनिबद्ध गान कहा जाता है। अनिबद्ध–गान के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं :–

रागालाप – प्राचीन काल में आलाप करने का यही एक ढंग होता था। यह अनिबद्ध गान कहा जाता था। रागालाप के द्वारा राग के प्रमुख इन दस लक्षणों ग्रह, अंश, न्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडव, औडव, अपन्यास, मन्द्र व तार को दिखलाया जाता था।

रूपकालाप – प्राचीनकाल में आलाप करने का यह दूसरा प्रकार होता है। इसमें गायक, विभिन्न प्रकार से राग का विस्तार करके राग के स्वरूप को खींचता था। आधुनिक काल में गायन का यह अनिबद्ध प्रकार प्रचार में नहीं है।

आलप्तिगान – प्राचीनकाल में सर्वप्रथम रागालाप होता था। उसके बाद रूपकालाप तथा अन्त में आलप्तिगान होता था। इन तीनों के बाद राग की चीजें अर्थात, प्रबन्ध, वस्तु, रूपक गायी जाती थी। रागालाप के दस लक्षणों के अतिरिक्त आर्विभाव–तिरोभाव भी इसके माध्यम से दिखाया जाता था। आधुनिक काल में गीत का यह अनिबद्ध प्रकार प्रचार में नहीं है।

1.3.6 जातिगायन – 'यथा योगं ग्रामदूयाज्जायन्त इति जातयः।' अर्थात् जाति की उत्पत्ति दोनों ग्रामों से होती है। प्राचीनकाल में मुख्य रूपेण तीन प्रकार के ग्राम होते थे। षडज ग्राम, मध्यम ग्राम तथा गन्धार ग्राम। गन्धार ग्राम प्राचीनकाल से ही लुप्त माना गया है।

भरतकृत नाट्यशास्त्र में लिखा है कि दो ग्रामों से 18 जातियां उत्पन्न हुईं। षडज ग्राम से सात तथा मध्यम ग्राम से ग्यारह जातियां मानी गयी। इन जातियों को 'शुद्धा' और 'विकृता' जातियों के अर्न्तगत बांटा गया। इनमें से 7 शुद्ध तथा 11 विकृत मानी गयी। षडज ग्राम की चार जातियां– षाडजी, आर्षभी, धैवती तथा नैषादी और मध्यम ग्राम की तीन जातियां गांधारी, मध्यमा तथा पंचमी शुद्ध मानी गयी। ये नाम सातों स्वरों के आधार पर रखे गए। शेष ग्यारह जातियां(3 षडज ग्राम की और 8 मध्यम ग्राम की) विकृत जातियां कही गयी। इस प्रकार कुल 18 जातियां हुई। शुद्ध जातियां वे कहलायी, जिनमें सातों स्वर प्रयोग किए जाते थे। जैसे षाडजी, आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती आदि, इनमें नाम स्वर, ग्रह, अंश तथा न्यास होते थे। शुद्ध जातियों के लक्षणों में परिवर्तन करने से जैसे न्यास, अपन्यास, ग्रह, अंश, स्वर बदलने से तथा दो या दो से अधिक जातियों को एक में मिला देने से विकृत जातियों की रचना होती थी। जैसे–षाडजी और गन्धारी मिला देने से षडज कौशिकी, गन्धारी और आर्षभी को मिला देने से आंध्री विकृत जातियां बनती थीं।

राग और जाति एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द कहे जा सकते हैं। जिस प्रकार आजकल राग गायन प्रचलित है, उसी प्रकार प्राचीन काल में जाति गायन प्रचालित था।

प्राचीन काल में जाति के कुल दस लक्षण माने जाते थे – ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, औडत्व, षाडत्व, मन्द्र तथा तार। इसे भरत ने 'दशाविधि जाति लक्षण' कहा है। ग्राम से मूर्च्छना तथा मूर्च्छना के आधार पर जाति की रचना हुई है।

उपरोक्त वर्णन से आप भली–भांति 'जाति' शब्द से परिचित हो गए होंगे तथा जान गए होंगे कि भरत के अनुसार षडज ग्राम तथा मध्यम ग्राम से कितनी जातियां उत्पन्न हुई हैं, गन्धार ग्राम का उल्लेख क्यों नहीं मिलता है, जाति के कितने तथा कौन–कौन से लक्षण माने जाते थे तथा भरत ने 'दशाविधि जाति लक्षण' किसे कहा है।

मतंग कृत वृहद्देशी में श्रुति, ग्रह स्वर आदि के समूह से जिस विधा की रचना होती है उसे 'जाति' कहते हैं। "श्रुति ग्रहस्वरादि समूहाज्जायन्त इति जातयः।"

आचार्य वृहस्पति के अनुसार रंजन और अदृष्टि अभ्युदय को जन्म देते हुए विशिष्ट स्वर ही विशेष प्रकार के सन्निवेश से युक्त होने पर "जाति" कहे जाते हैं। यहाँ पर विशिष्ट 'स्वर सन्निवेश' से तात्पर्य जाति के उपरोक्त दस लक्षणों से है। कुछ काल के बाद यही लक्षण राग में दिखाए दिए जिससे यह सिद्ध हुआ कि जाति राग की पूर्ण संज्ञा थी। जाति गायन विशुद्ध माना गया और उसे गान्धर्व की श्रेणी में रखा गया जिससे मोक्ष की प्राप्ति मानी गयी तथा राग को संगीतकारों ने देशी संगीत की श्रेणी में रखा जिसका मुख्य प्रयोग जन मन रंजन ही कहा है।

सर्वप्रथम आपको ग्रह और न्यास के विषय में बताते हैं।

ग्रह व न्यास – 'ग्रह और न्यास' स्वरों का हमारे संगीत में अधिक महत्व तो नहीं है परन्तु प्राचीन संगीत में ये महत्वपूर्ण माने गए हैं। जिस स्वर से गीत का आलाप आरम्भ होता था, उसे ग्रह' स्वर कहते थे तथा जिस पर गीत समाप्त होता था उसे न्यास कहते थे। न्यास की व्याख्या इस प्रकार है – 'गीते समाप्तिकृन्यासः'। इसी प्रकार ग्रह की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है – 'गीतादिनिहितस्तत्र स्वरोग्रह इतीरितः।'

अंश – जाति के प्रमुख स्वर को प्राचीन काल में अंश कहा जाता था। जैसे आजकल किसी राग के प्रमूख स्वर को वादी स्वर कहते हैं उसी प्रकार पहले राग में वादी एक होता था, किन्तु जाति में एक या एक से अधिक अंश स्वर होते थे। कुल मिलाकर 63 अंश स्वर माने जाते थे।

अपन्यास – जिस स्वर पर गीत या वाद्य रचना का मध्य भाग समाप्त होता था वह अपन्यास स्वर कहलाता था। एक जाति में एक से अधिक अपन्यास स्वर भी होने सम्भव थे।

अल्पत्व–बहुत्व – जिन स्वरों का प्रयोग किसी जाति में अल्प होता था। उनका स्थान अल्पत्व माना जाता था। अल्पत्व के दो प्रकार माने गए थे– लंघन अल्पत्व तथा अनाभ्यास अल्पत्व। इसी प्रकार बहुत्व के भी दो प्रकार गाने गए थे– अलंघन बहुत्व तथा अभ्यास बहुत्व।

षाडत्व–औडवत्व – किसी जाति में 6 स्वर प्रयोग किए जाने पर षाडत्व और 5 स्वर प्रयोग किए जाने पर उनका स्वरूप औडवत्व कहलाता था।

मन्द्र तथा तार – प्रत्येक जाति की एक निश्चित सीमा होती थी, जिसके अन्दर गायक या वादक को रहना पड़ता था। मन्द्र स्थान में अंश, न्यास या अपन्यास तक जा सकते थे। इसी प्रकार तार स्थान में अंश स्तर से चौथे, पांचवें तथा सातवें स्वर तक जा सकते थे।

सन्यास व विन्यास – जिस स्वर पर गीत का प्रथम भाग खत्म हो, उसका संवादी स्वर सन्यास कहलता था तथा गीत का अंतिम स्वर विन्यास कहलाता था।

अन्तरमार्ग – जाति के दस लक्षणों का पालन करते हुए तिरोभाव–आर्विभाव दिखाना अन्तरमार्ग कहलाता था।

भरत कालीन जाति गायन के दस लक्षणों से आप भली प्रकार परिचित हो गए होंगे तथा जान गए होंगे कि जातिगायन के दस लक्षण कौन–कौन से हैं, ग्रह तथा न्यास किसे कहा जाता था। यहाँ पर यह बताना भी आवश्यकीय है कि भरतकालीन जाति गायन का विकसित रूप आधुनिक कालीन राग गायन है। प्राचीन काल में जाति गायन होता था तथा आधुनिक काल में राग गायन होता है।

जाति गायन में ग्रह स्वर का बड़ा महत्व था। इस स्वर से ही जाति गायन प्रारम्भ किया जाना आवश्यकीय होता था। जातिगायन में अंश स्वर का प्रयोग राग के 'वादी' स्वर के रूप में किया जाता था। आजकल राग गायन हेतु केवल वादी स्वर महत्वपूर्ण होता है और उसका चौथा या पांचवां स्वर संवादी माना जाता है।

किसी भी जाति का अन्तिम स्वर निश्चित होता था जिसे न्यास स्वर कहते थे। किन्तु आजकल राग गायन का कोई निश्चित अन्तिम स्वर नहीं होता है। आजकल राग गायन में वादी–संवादी स्वरों के अतिरिक्त राग के कुछ स्वरों पर न्यास(ठहराव) करना राग के स्वरूप बचाए रखने हेतु आवश्यक माना जाता है।

जाति गायन में षाडव अथवा औडव जाति बनाई जा सकती थी, परन्तु राग गायन में राग स्वयं सम्पूर्ण होने के अतिरिक्त स्वयं ही षाडव या औडुव होता है, अतः उनको पुनः षाडव या औडुव बनाना संभव नहीं होगा। आधुनिक काल में औडुव या षाडव जाति से राग में प्रयुक्त स्वरों की संख्या का बोध होता है। प्राचीन काल में जाति गायन में प्रत्येक जाति की मन्द्र व तार सप्तकों में सीमा निर्धारित थी किन्तु राग–गायन में ऐसा नहीं है। अब पूर्वांग–उत्तरांग प्रधान रागों का प्रचलन है। जातिगायन में 'तिरोभाव–आर्विभाव' क्रिया का प्रयोग जिस अर्थ में होता था, वैसा ही प्रयोग आधुनिक काल में राग गायन में होता है।

इस प्रकार आप भली भांति उपरोक्त अध्याय के माध्यम से जान गए होंगे कि जातिगायन क्या है, राग गायन और जातिगायन में क्या–क्या अन्तर हैं, जाति गायन कब किया जाता था तथा राग गायन कब प्रचार में आया। इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से यह कह सकते हैं कि राग गायन कोई नवीन शैली नहीं है, बल्कि जाति गायन का विकसित रूप है।

1.3.7 शुद्ध राग – सर्वप्रथम हम 'राग' शब्द को स्पष्ट रूप से परिभाषित करेंगे। भारतीय संगीत में राग शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है कि जो रचना स्वर तथा वर्ण से मिलकर बनी हो तथा चितरंजक हो उसे 'राग' कहते हैं। राग के स्वर 'सा रे ग म प ध नि' माने जाते हैं। इन्हें मिलाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं। सरगम को स्वरों तथा वर्णों के आधार पर मिलाने पर 'राग' की संरचना हो जाती है। जैसे– "सा, रेग रेग, ग, पग रे ग रे सा" यह एक राग बन सकता है।

प्राचीन काल में सभी रागों को शुद्ध, छायालग तथा संकीर्ण रागों में विभाजित कर दिया जाता था तथा वे राग, जो कि पूर्णतः स्वतन्त्र हों तथा उनमें किसी भी अन्य राग की छाया न आती हो उसे 'शुद्ध राग' कहा जाता था। मतंग और शारंगदेव के ग्रन्थों में रागों के स्वरूपों का वर्णन इस प्रकार मिलता है–

शास्त्रोक्त नियमानतिक्रमेन स्वतो रक्ति हेतुत्वं।
छायालग रागत्वं नामान्य छाया लगत्वेनरक्ति हेतु त्वम्।
संकीर्ण रागत्वं नाम शुद्ध छायालगमिश्रत्वेन रक्ति हेतुत्वम्।।

अर्थात् शुद्ध राग वे राग हैं जिनमें शास्त्रों के नियमों का पूर्णरूप से पालन होता है। छायालग राग वे राग हैं जिनमें किसी अन्य राग की छाया दिखाई देती है तथा संकीर्ण राग वे राग हैं जो शुद्ध व छायालग रागों के मिश्रण से बनते हैं।

फकीरूल्ला के 'राग दर्पण' में शुद्ध राग प्रमुख छः रागों को कहा गया है। शारंगदेव के अनुसार शुद्ध राग एक प्रकार का स्वतन्त्र राग है। आधुनिक दस थाटों के राग 'शुद्ध राग' माने जा सकते हैं। राग कल्याण, राग मुल्तानी, राग तोड़ी आदि पूर्णतः शुद्ध राग कहे जाते हैं।

उपरोक्त वर्णन से आप भली–भाँति परिचित हो गए होंगे कि शुद्ध राग किसे कहते हैं तथा ये कौन–कौन से हैं।

1.3.8 छायालग राग – मतंग तथा शारंगदेव के अनुसार "छायालग राग" वे राग हैं जिनमें किसी अन्य राग की छाया दिखायी देती हो। जैसे राग परज की छाया राग बसन्त में, राग जलधर केदार में दुर्गा की छाया, राग मेघमल्हार में राग सारंग की तथा राग विलासखानी तोड़ी में राग भैरवी की छाया दिखायी देती है। अतः उपरोक्त राग 'छायालग राग' होंगे।

1.3.9 संकीर्ण राग – संकीर्ण राग वे राग हैं जो शुद्ध और छायालग रागों के मिश्रण से बने हैं। राग दर्पण में शुद्ध राग छः माने गए हैं तथा संकीर्ण राग उनकी रागिनी और उनके पुत्ररागों को कहा है। संकीर्ण राग को मिश्रराग भी कहा जाता है। जब एक राग में दूसरा राग मिल जाता है या जब दो या दो से अधिक रागों का मिश्रण किसी राग में दिखाई दे तो वह "संकीर्ण या मिश्र राग" कहलाता है। जैसे राग भैरव बहार में राग भैरव और बहार का मिश्रण है। राग जयन्त मल्हार में राग जैजैवन्ती तथा मल्हार का मिश्रण है। राग अहीर भैरव में राग काफी तथा भैरव का मिश्रण है। इसी प्रकार धानी कौंस में राग धानी तथा राग मालकौंस का मिश्रण है।

1.3.10 पूर्वांगवादी राग – प्रत्येक हिन्दुस्तानी राग दिन अथवा रात्रि में गाया–बजाया जाता है। रागों के समय को निर्धारित करने के लिए कुछ नियम भी हैं जैसे पूर्व राग, उत्तर राग, सन्धि प्रकाश राग, अध्वदर्शक स्वर आदि। पूर्व राग तथा उत्तर राग के नियम के अनुसार भारतीय विद्वानों ने सप्तक के सात स्वरों को दो भागों में बाँटा है। प्रथम भाग "सा रे ग म प" है तथा दूसरा भाग "म प ध नि सां" है। जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में अर्थात् 'सा रे ग म' स्वरों में होता है, उन रागों को दिन के 12 बजे से रात्रि 12 बजे तक गाया–बजाया जाता है तथा ऐसे रागों को पूर्वांगवादी राग कहते हैं। उदाहरणार्थ राग खमाज का वादी स्वर गन्धार (ग) है। अतः यह पूर्व राग कहलाएगा तथा इसको 12 बजे दिन से 12 बजे रात्रि तक गाया–बजाया जा सकता है।

1.3.11 उत्तरांगवादी राग – जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग अर्थात् 'प ध नि सां' स्वर में होता है, उन्हें उत्तरांगवादी राग कहते हैं। ऐसे रागों को रात के 12 बजे से दिन के 12 बजे तक गाया–बजाया जाता है। उदाहरणार्थ राग भैरवी में धैवत स्वर वादी हैं, इसलिए यह एक उत्तरांगवादी राग है।

1.3.12 परमेल प्रवेशक राग – 'मेल' का तात्पर्य है 'थाट'। जैसा कि नाम से ही विदित होता है कि जो राग एक थाट से दूसरे थाट में प्रवेश करते हैं, उन्हें परमेल प्रवेशक राग कहते हैं। 'परमेल प्रवेशक' का अर्थ है दूसरे मेल में प्रवेश कराने वाला। ये राग ऐसे समय गाए जाते हैं जब उनके थाट का समय समाप्त होने को होता है तथा दूसरे थाट, जिनमें वे प्रवेश करते हैं, अर्थात् दूसरे थाट से उत्पन्न रागों का गायन काल हो जाता है ऐसे राग 'परमेल प्रवेशक राग' कहलाते हैं। उदाहरणार्थ जैजैवन्ती राग एक परमेल–प्रवेशक राग है। यह राग उस समय गाया–बजाया जाता है जब रात्रि के रे, ध शुद्ध स्वरों वाले रागों का समय समाप्त होता है तथा 'ग–नि' कोमल स्वरों वाले रागों का समय शुरू होता है। राग जैजैवन्ती एक वर्ग के रागों को समाप्त करके दूसरे वर्ग के रागों में प्रवेश कराता है, अतः यह एक परमेल–प्रवेशक राग कहलाता है।

जैसा कि आपको ज्ञात होगा कि भारतीय राग की मुख्य विशेषता है कि उनका गायन काल निर्धारित होता है। परमेल प्रवेशक राग भी अपने समय निर्धारण के अनुसार गाया–बजाया जाता है।

आप उपरोक्त अध्याय से परमेल प्रवेशक राग के विषय में भली–भाँति परिचित हो गए होंगे कि परमेल प्रवेशक राग किसे कहते हैं।

1.3.13 सन्धि प्रकाश राग – हिन्दुस्तानी संगीत में रागों का समय निर्धारित करने के लिए नियम बने हैं। शाब्दिक अर्थानुसार जो राग दिन और रात की सन्धि बेला में गाए–बजाए जाते हैं उन्हें सन्धि प्रकाश राग कहते हैं। सन्धि प्रकाश रागों का समय प्रातः 4 बजे से 7 बजे तक तथा सायं 4 बजे से 7 बजे तक का माना जाता है। अर्थात सुबह तथा शाम को 4 बजे से 7 बजे तक गाए जाने वाले रागों को सन्धि प्रकाश राग कहते हैं। इन रागों में रिषभ (रे) तथा धैवत (ध) स्वर कोमल लगते हैं। जैसे– भैरवी, पूर्वी, कालिंगडा आदि सन्धि प्रकाश राग हैं।

प्रातःकालीन सन्धि प्रकाश रागों के अन्तर्गत राग भैरव, रामकली, राग परज, जोगिया, भैरव के अन्य प्रकार तथा कालिंगडा आदि प्रमुख हैं। **सायंकालीन सन्धि प्रकाश राग** रागपूर्वी, मारवा, धनाश्री, पूरिया तथा राग श्री आदि प्रमुख हैं।

जिन रागों में तीव्र मध्यम की अपेक्षा शुद्ध मध्यम का महत्व कम होता है ऐसे सन्धि प्रकाश रागों में परज प्रमुख है। तीव्र मध्यम का आभास हमें इस बात की सूचना देता है कि अब रात्रि आने वाली है। रात्रि के बढ़ते ही तीव्र मध्यम प्रबल हो जाता है, अतः इस समय राग पूरिया धनाश्री, राग श्री, राग मुल्तानी व यमन राग आदि राग गाए–बजाए जाते हैं।

इस प्रकार हम स्पष्टतः कह सकते हैं कि शुद्ध मध्यम दिन की सूचना देता है तथा तीव्र मध्यम रात्रि की सूचना देता है। अतः समय–निर्धारण के अनुसार सुबह तथा शाम की सन्धि बेला में ही सन्धि प्रकाश राग गाए–बजाए जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. नाद की मुख्य तीन विशेषताएं लिखिए।
2. नाद के कितने प्रकार होते हैं?
3. ग्राम कितने प्रकार के होते हैं?
4. मूर्च्छनाओं के कितने प्रकार माने गए हैं?
5. ध्रुपद के साथ संगत हेतु किन तालों का विशेष प्रयोग होता है?
6. धमार गायन में किसका वर्णन मिलता है?
7. जाति के कुल कितने लक्षण माने जाते हैं?
8. जिस स्वर से जाति गायन प्रारम्भ किया जाता था, उसे क्या कहा जाता था?
9. जिस स्वर पर गीत की समाप्ति होती थी, वह क्या कहलाता था?
10. राग कल्याण, मुल्तानी तथा तोड़ी किन रागों की श्रेणी में आते हैं?
11. संकीर्ण राग किन रागों के मिश्रण से बनते हैं?
12. कौन से राग छायालग राग कहलाते हैं?
13. किन रागों को पूर्वांगवादी राग कहते हैं?
14. किन रागों को उत्तरान्गवादी राग कहते हैं?
15. जैजैवन्ती किस प्रकार का राग है?
16. राग मारवा, भैरव, राग कालिंगडा, राग पूर्वी किस प्रकार के राग हैं?

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों जैसे नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादिराग, उतरान्गवादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग को समझ चुके होंगे। इन सांगीतिक शब्दों को समझने के पश्चात आपको संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष को समझ पाने में आसानी होगी। इन मूलभूत शब्दों व इनके अन्तर को समझ कर आप अपने गायन अथवा वादन में

इनका सही प्रयोग कर सकेंगे। भारतीय शास्त्रीय संगीत में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। राग के विभिन्न प्रकारों के अध्ययन के पश्चात रागों के पूर्ण स्वरूप को समझने में भी आसानी होगी।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नाद की मुख्य तीन विशेषताएं हैं– (1) नाद का ऊँचा नीचापन (2) नाद का छोटा–बड़ापन (3) नाद की जाति एवं गुण है
2. नाद दो प्रकार के होते हैं – 1. आहत नाद 2. अनाहत नाद।
3. ग्राम तीन प्रकार के होते हैं– षडज ग्राम, मध्यम ग्राम तथा गन्धार ग्राम।
4. मूर्च्छनाओं के चार प्रकार माने गए हैं – शुद्धा, काकली संहिता, अन्तर संहिता तथा अन्तर–काकली संहिता।
5. ध्रुपद के साथ संगत हेतु चारताल व सूलताल का विशेष प्रयोग होता है।
6. धमार गायन में ब्रज की राधा–कृष्ण होरी का वर्णन मिलता है।
7. जाति के कुल दस लक्षण माने जाते है–ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, औडत्व, षाडत्व, मन्द्र व तार।
8. जिस स्वर से जाति गायन प्रारम्भ किया जाता था, उसे 'ग्रह स्वर' कहा जाता था।
9. जिस स्वर पर गीत की समाप्ति होती थी वह 'न्यास' कहलाता था।
10. राग कल्याण, मुल्तानी तथा राग तोड़ी शुद्ध रागों की श्रेणी में आते हैं।
11. संकीर्ण राग वे राग हैं, जो शुद्ध और छायालग रागों के मिश्रण से बनते हैं।
12. वे राग जिनमें किसी अन्य राग की छाया दिखायी देती हो, छायालग राग कहलाते हैं।
13. जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में हो उन्हें पूर्वांगवादी राग कहते हैं।
14. जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग में हो उनको उत्तरांगवादी राग कहते हैं।
15. जैजैवन्ती एक परमेल प्रवेशक राग है।
16. राग मारवा, भैरव, राग कालिंगडा, राग पूर्वी आदि सन्धि प्रकाश राग हैं।

1.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, भगवतशरण, हाईस्कूल संगीत शास्त्र।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, प्रभाकर प्रश्नोत्तर।
3. जैन, डॉ0 रेनू, स्वर और राग।
4. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, संगीत शास्त्र दर्पण।
5. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, प्रवीण प्रवाह।
6. भातखण्डे, पं0 विष्णु नारायण, भातखण्डे संगीत शास्त्र।
7. संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस।
8. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, *राग परिचय भाग 1 व 2*, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
10. परांजपे, श्रीधर, *संगीत बोध*।

1.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान व अनिबद्ध गान का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वांगवादी राग, उत्तरांगवादी राग, परमेल–प्रवेशक राग व सन्धि प्रकाश राग को विस्तार से समझाइए।

इकाई 2 – पं0 विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर स्वरलिपि पद्धति का परिचय एवं भातखण्डे पद्धति से तुलना।

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 स्वरलिपि पद्धति
  2.3.1 पं0 विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर स्वरलिपि पद्धति
  2.3.2 पं0 प्लुस्कर एवं पं0 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति की तुलना
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–220) के तृतीय सेमेमस्टर की द्वितीय इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों जैसे नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादिराग, उतरान्गवादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग को जान चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में आपको पं0 विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर स्वरलिपि पद्धति का परिचय तथा यह पद्धति भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति से किस तरह भिन्न है यह बताया जाएगा।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हिन्दुस्तानी संगीत में प्रचलित दोनों पद्धतियों के बारे में जान सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप :–

- जान सकेंगे कि स्वरलिपि पद्धति क्या है तथा इसका क्या महत्त्व है।
- जान सकेंगे कि इन पद्धतियों के प्रवर्तक कौन–कौन हैं।
- पाठ्यक्रम के रागों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- विभिन्न स्वर समुदाय की सहायता से राग पहचानने की क्षमता को बढा सकेंगे।

2.3 स्वरलिपि पद्धति

अपने विचार व भाव व्यक्त करने के लिए जिस प्रकार भाषा की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार रागबद्ध, तालबद्ध रचनाओं को स्थायित्व देने के लिए स्वरलिपि की संगीत में अत्यन्त आवश्यकता होती है। इस प्रकार किसी गाने की कविता अथवा साजों पर बजाने की गत को स्वर और ताल के साथ जब लिखा जाता है तब उसे स्वरलिपि कहते हैं। स्वरलिपि पद्धति के माध्यम से ही सामुहिक शिक्षा प्रदान करना भी संभव है।

प्राचीन काल में भारत में लगभग 250–300 ई0 पूर्व अर्थात पाणिनी के समय के पहले ही स्वरलिपि पद्धति विद्यमान थी। किन्तु उस समय तीव्र और कोमल स्वरों के भेद तथा ताल मात्रा सहित स्वरलिपि नहीं होती थी। केवल स्वरों के नाम उनके प्रथम अक्षर के साथ सरगम के रूप में दिए जाते थे। उससे केवल इतना ही पता चल पाता था कि अमुक गायन में अमुक स्वर प्रयुक्त हुए हैं।

तीव्र कोमल स्वरों के चिन्ह न होने के कारण व ताल, मात्रा, मीड़ आदि के अभाव में उन स्वरलिपियों से संगीत शिक्षार्थी लाभ उठाने में असमर्थ रहे। उसके पश्चात भी स्वरलिपि पद्धति में समय–समय में परिवर्तन होते रहे लेकिन कोई भी प्रचलित नहीं हो सकी।

अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों के शासन काल में अग्रेजों की उपेक्षा के कारण वैदिक कालीन उत्कृष्ठ संगीत कला का जब ह्रास होकर समाज के अप्रतिष्ठित लोगों के पास चली गई उस समय संगीत के प्रचार हेतु कई महापुरूष आगे आए, उन्हीं में से दो महापुरूष जो इस क्षेत्र में आगे आए उनके नाम हैं पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे व पं0 विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर। दोनों ने संगीत के उद्धार के लिए बहुत परिश्रम किया। जन–जन तक संगीत पहुंचाने के लिए तथा क्रियात्मक संगीत को स्थायित्व देने हेतु अपनी अपनी स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया। जो भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति व विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर स्वलिपि पद्धति कहलाई।

पं0 भातखण्डे ने पुराने घरानेदार उस्तादों के गायकों की स्वरलिपियाँ तैयार करने में बहुत परिश्रम किया। उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करके उस्तादों की सेवा तथा खुशामद करके स्वरलिपियाँ तैयार की। उस समय कुछ ऐसे उस्ताद थे जो अपने गाने की स्वरलिपियाँ दूसरे व्यक्ति को बनाने की अनुमती नहीं देते थे। पं0 भातखण्डे जी ने बडी युक्ति और कौशल से परदों के पीछे छिप–छिप कर उनका गायन सुना और स्वरलिपियाँ तैयार की तथा बहुत सी स्वरलिपियाँ ग्रामोफोन रिकार्डों द्वारा भी तैयार की। इस प्रकार कई हजार चीजों की स्वरलिपियाँ तैयार करके उन्हें 'क्रमिक पुस्तक मालिका' नाम से भाग 1 से भाग 6 तक प्रकाशित कराकर संगीत विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी ने भी कई पुस्तकें तैयार की। पं0 पलुस्कर जी की स्वरलिपि पद्धति जो प्रारम्भ में उनके द्वारा निर्मित भी उसमें कुछ परिवर्तन हुए हैं। पं0 प्लुस्कर जी की प्रारम्भिक मूल पुस्तकों में तथा आज उनके विद्यालयों में चलने वाली 'राग विज्ञान' आदि पुस्तकों के चिन्हों में काफी अन्तर पाया जाता है। वर्तमान स्वरलिपि प्रणाली उनकी प्राचीन से अधिक सुविधाजनक हैं। पं0 प्लुस्कर जी की वर्तमान परिमार्जित स्वरलिपि पद्धति का वर्णन प्रस्तुत है।

2.3.1 पं0 विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर स्वरलिपि पद्धति – पं0 विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर पद्धति के अनुसार स्वर तथा ताल–लिपि के चिन्ह इस प्रकार लिखे जाते हैं:–

1. जिन स्वरों के ऊपर व नीचे कोई चिन्ह नहीं होता, वे मध्य सप्तक के शुद्ध स्वर समझे जाते हैं। जैसे ग, रे।
2. जिन स्वरों के नीचे हलन्त होता है वे कोमल स्वर समझे जाते हैं। जैसे ग्, ध्।
3. तीव्र या विकृत मध्यम को उल्टा हलन्त द्वारा इस प्रकार दिखाते हैं। जैसे म्र (नीचे उल्टा हलन्त होता है)।
4. ऊपर बिन्दी वाले मन्द्र सप्तक समझे जाते हैं। जैसे गं, रें।
5. मध्य सप्तक के लिए कोई चिन्ह नहीं होता। जैसे ग रे।
6. जिन स्वरों के ऊपर खड़ी लकीर होती है वे तार सप्तक के स्वर होते हैं। जैसे ग॑, म॑ ।
7. स्वरों को दीर्घ करने के लिए अवग्रह लगता है। जैसे – मऽऽ। अक्षरों को दीर्घ करने के लिए – रा––म ।

विश्रान्ति चिन्ह – (,) कामा

एक मात्रा का चिन्ह	–	सा रे
दो मात्रा का चिन्ह	–	सा रे (ऽ ऽ)
आधी मात्रा का चिन्ह	–	सा रे (० ०)
चौथाई मात्रा का चिन्ह	–	सा रे ग म (◡)
$\frac{1}{8}$ मात्रा का चिन्ह	–	◡◡
$\frac{1}{3}$ मात्रा का चिन्ह	–	~ या (रे ग म) $\frac{1}{3}\frac{1}{3}\frac{1}{3}$
$\frac{1}{6}$ मात्रा का चिन्ह	–	≈ या (रे ग म प ध प) $\frac{1}{6}\frac{1}{6}\frac{1}{6}\frac{1}{6}\frac{1}{6}\frac{1}{6}$

ताल के प्रत्येक आवर्तन में एक विराम(।) लगाया जाता है, स्थाई के अन्त में दो विराम (।।) लगाते हैं। पूरे गीत के अन्त में तीन विराम (।।।) लगाते हैं। ताली के स्थान पर मात्राओं की संख्या लिखते हैं।

सम का चिन्ह	–	1
खाली का चिन्ह	–	+
कण या स्पर्श स्वर	–	ध प ग ग
मींड	–	म⌒नि

2.3.2 पं0 प्लुस्कर एवं पं0 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति की तुलना :–

भातखण्डे पद्धति	प्लुस्कर पद्धति
1. भातखण्डे पद्धति के अनुसार स्वर–लेखन पद्धति के चिन्ह इस प्रकार हैं:– कोमल स्वर – ध॒ ग॒ तीव्र स्वर – मं तार सप्तक – सां गं मन्द्र सप्तक – म़ ध़ स्वरों का उच्चारण बढ़ाना – प–– गीत का उच्चारण बढाना – राऽऽम	1. प्लुस्कर पद्धति के अनुसार स्वर–लेखन पद्धति के चिन्ह इस प्रकार हैं:– कोमल स्वर – ध् ग् तीव्र स्वर – म्र तार सप्तक – गं, मं मन्द्र सप्तक – मं धं स्वरों का उच्चारण बढाना – प ऽ ऽ गीत का उच्चारण बढाना – रा––म
2. इस पद्धति के अनुसारताललिपि पद्धति के चिन्ह इस प्रकार है:– सम – × ताली – 2, 3, ताली की संख्या खाली – 0	2. इस पद्धति के अनुसार ताललिपि के चिन्ह इस प्रकार हैं:– सम – 1 ताली – तालियों पर मात्राओं की संख्या खाली – +
3. इस पद्धति में मात्रा और मात्राओं को दिखाने के लिए कॉमा(,) तथा (–) पड़ी रेखा का प्रयोग होता है तथा साथ में इस चिन्ह ◡ को दिखाया जाता है, जैसे– सा, रे – ग म = सा = $\frac{1}{5}$ मात्रा	3. इस पद्धति के अनुसार मात्रा तथा मात्राओं के अलग–अलग चिन्ह हैं। जैसे दो मात्राओं का चिन्ह ऽ है, एक मात्रा का चिन्ह – तथा चौथाई मात्रा का चिन्ह◡है आदि।
4. कण अर्थात स्पर्श स्वर का चिन्ह इस पद्धति में इस प्रकार है– गध	4. कण का चिन्ह इस पद्धति में भातखण्डे पद्धति से ही लिया गया है– गध
5. भातखण्डे पद्धति में विश्रान्ति का कोई चिन्ह नहीं है।	5. प्लुस्कर पद्धति विश्रान्ति का चिन्ह कॉमा(,) है।
6. भातखण्डे पद्धति में गीत, गत, अथवा ताल	7. प्लुस्कर पद्धति में गीत, गत अथवा ताल

को लिपि में लिखने के लिए उसे ताल के विभागानुसार लिखते हैं।	को लिपि में लिखने के लिए ताल को विभागानुसार न लिखकर प्रत्येक आवर्तन के बाद एक खड़ी पाई (।), स्थाई के बाद दो खड़ी पाइयाँ (।।), अन्तरा के बाद तीन खड़ी पाइयाँ (।।।) लगाते हैं।
7. भातखण्डे पद्धति प्लुस्कर पद्धति की अपेक्षा अधिक सरल है।	8. प्लुस्कर पद्धति भातखण्डे पद्धति की अपेक्षा कठिन तथा वैज्ञानिक है।
8. स्वरों के ऊपर ⌒ इस प्रकार के चिन्ह को मीड़ कहते हैं। जैसे म प ध नि अर्थात यहाँ पर म से नि तक मींड ली जाएगी।	8. इस पद्धति में मींड को दर्शाने के लिए स्वरों के ऊपर ⌒ चिन्ह का प्रयोग करते हैं।
9. कोष्टक में बन्द स्वर(खटका) के लिए एक मात्रा में चार स्वर गाए जाते हैं। (प) पधमप	9. खटका को दर्शाने के लिए स्वर को कोष्टक में लिखा जाता है। (प)

इस प्रकार आप समझ चुके हैं कि दोनों पद्धतियों में स्वर लेखन, तालिपि में काफी अन्तर है। मात्राओं को दिखाने के लिए भी अलग–अलग चिन्ह है किन्तु कुछ चीजें ऐसी हैं जो किसी एक पद्धति में है दूसरी में नहीं है तथा कुछ चिन्ह जैसे कण स्वर प्लुस्कर पद्धति में भातखण्डे जी की स्वरलिपि पद्धति से ही लिया गया है। अतः दोनों पद्धतियाँ एक दूसरे से भिन्न है किन्तु कुछ समानताएं भी हैं।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. स्वरलिपि पद्धति क्या है? बताइए।

ख. सत्य अथवा असत्य लिखिए :–

1. दोनों पद्धतियों में शुद्ध स्वर का कोई चिन्ह नहीं होता है।
2. विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर पद्धति में तार स्वर में ऊपर बिन्दी लगी होती है।
3. भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में सम दिखाने के लिए 0 चिन्ह का प्रयोग होता है।
4. कण अथवा स्पर्श स्वर दोनों पद्धतियों में एक ही तरह से लगाया जाता है।

2.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि स्वरलिपि पद्धति क्या है तथा संगीत शिक्षण में इसकी क्या उपयोगिता है। आपने जाना कि किसी भी कविता अथवा गत को किसी भी राग के स्वर तथा ताल के साथ लिखा जाता है तो उसे स्वरलिपि कहते हैं। भारत में पाणिनी के समय से ही स्वरलिपि पद्धति प्रचलित थी, किन्तु अधिक स्पष्ट नहीं होने के कारण संगीत शिक्षार्थी उससे लाभ उठाने में असमर्थ रहे। शिक्षार्थियों हेतु सरल व सुबोध स्वरलिपि पद्धति का निर्माण 18वीं शताब्दी में पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा भातखण्डे जी ने अपने अथक परिश्रम से किया। यही पद्धतियां पं0 विष्णु दिगम्बर पद्धति तथा पं0 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति कहलाई। जो वर्तमान संगीत शिक्षण हेतु अत्यन्त उपयोगी है। आप प्रस्तुत इाकई में पं0 विष्णु दिगम्बर पद्धति का परिचय तथा भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति से यह किस तरह भिन्न है यह जान चुके हैं। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम के सभी रागों का विस्तृत परिचय तथा उन रागों के ही विभिन्न मुख्य स्वर समुदाय की सहायता से राग कैसे पहचानेंगे, यह भी जान चुके होंगे।

2.5 शब्दावली

- स्थायित्व – सर्वकालिक
- क्रियात्मक – व्यवहारिक / प्रयोगात्मक
- दीर्घ – बड़ा
- विवादी – जिस स्वर को लगाने से राग की हानि होती है, किन्तु कुशलता से कभी राग की सुन्दरता बढाने हेतु गाया जाता है।
- अल्प – थोड़ा / कम
- न्यास – ठहराना
- वक्र – स्वरों को बिना चक्र के प्रयोग (जैसे– सा ग रे म ग)
- मींड – एक स्वर से दूसरे स्वर में झूमते हुए आने की मीड़ कहते हैं।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.3 :–

ख. सत्य अथवा असत्य लिखिए :–

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गर्ग, प्रभुलाल(बसन्त), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. श्रीवास्तव हरीशचन्द्र, राग परिचय भाग–2, 3।
3. द्विवेदी, रामाकान्त, संगीत स्वरित।
4. भातखण्डे, विष्णु नारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग – 3, 4।

2.8 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. झा, रामाश्रय, अभिनव गीतान्जली।
3. परांजपे, डॉ0 शरदचन्द्र श्रीधर, संगीत बोध।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. **स्वरलिपि** पद्धति क्या है? पं0 विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति का परिचय तथा भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति से उसकी तुलना कीजिए।

इकाई 3 – ताल के दस प्राणों (काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति व प्रस्तार) का संक्षिप्त अध्ययन।

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 ताल के दस प्राण
3.4 काल
3.5 मार्ग
3.6 क्रिया
3.7 अंग
3.8 ग्रह
3.9 जाति
3.10 कला
3.11 लय
3.11.1 लयकारी
3.12 यति
3.13 प्रस्तार
3.14 सारांश
3.15 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
3.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.17 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–220) के तृतीय सेमेमस्टर की तृतीय इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आप पं0 विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर स्वरलिपि पद्धति का परिचय तथा यह पद्धति भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति से किस तरह भिन्न है जान गए हैं।

इस इकाई में ताल के प्राण को विस्तार से समझाया गया है। ताल को साकार रूप में स्थापित करने एवं ताल को जीवन देने के कारण ताल के मूल तत्वों को प्राण कहा गया। इस इकाई के माध्यम से आप प्रत्येक प्राण का मार्गी तथा देशी ताल के सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे तथा साथ वर्तमान प्रचलित तालिपि के सन्दर्भ भी जानेगे। ताल के दस प्राण की वर्तमान में उपयोगिता के विषय में भी इस इकाई में चर्चा की जाएगी।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप ताल के प्राणों को समझ सकेंगे। आप ताल पद्धति में इनके महत्व से भी परिचित हो सकेंगे। आप वर्तमान में इनकी उपयोगिता को भी जान सकेंगे। इससे आप को प्राचीन ताल पद्धति तथा उसके व्यवहार के विषय में भी ज्ञान हो जाएगा तथा विभिन्न प्रकार की बन्दिशों की रचना हेतु प्रेरित होंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. ताल के दस प्राणों को जान सकेंगे।
2. मार्गी तथा देशी तालों के व्यवहार को जान सकेंगे।
3. प्रत्येक प्राण की उपयोगिता को मार्गी तथा देशी ताल के सन्दर्भ में समझ सकेंगे।
4. वर्तमान ताल पद्धति में दस प्राणों की उपयोगिता समझ सकेंगे।

3.3 ताल के दस प्राण

संगीत की प्रतिष्ठा ताल पर होती है अर्थात संगीत का आधार ताल ही है तथा ताल का आधार प्राचीन संगीत के ऋषियों द्वारा स्थापित तत्व हैं। ये तत्व ही ताल के प्राण हैं जो कि दस है। जिस प्रकार मानव में चेतन तथा अचेतन में प्राण ही है जो मानव को गति प्रदान करता है, प्राण निकल जाने पर मानव शरीर का भी अन्त हो जाता है। अतः प्राण तत्व मानव जीवन के लिए आवश्यक तत्व है। उसी प्रकार ताल हेतु भी प्राण आवश्यक तत्व है। प्राचीन भारतीय परम्पराओं के आधार पर मानव में निहित प्राण के दस भेद हैं। इसी से प्रेरित होकर ताल हेतु भी दस प्राण निश्चित किए गए। संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में एला प्रबन्ध के अन्तर्गत एला में पदों के दस प्राण का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार भारतीय ऋषियों द्वारा भारतीय ताल के तत्वों को भारतीय योग दर्शन तथा अध्यात्म से जोड़ा गया जिससे संगीत के प्रति आस्था एवं श्रद्धा बने एवं संगती में पवित्रता बनी रहे।

भरत ने ताल के तत्वों को प्राण न कह कर ताल के तत्व के रूप में प्रस्तुत किया। भरत ने इन तत्वों की संख्या आठ बताई जिसके अनुसार काल, मार्ग, क्रिया, काल अवयव, पाणि, ताल भेद, कला एवं यति हैं। संगीत मकरद में सर्वप्रथम ताल के दस प्राणों की चर्चा निम्न श्लोक के माध्यम से की की गई :–

" काल मार्ग क्रियांगाणि ग्रहोजातिः कला लयः
यति प्रस्तारकश्चेति तालप्राणा दश स्मृताः।।"

इसके अनुसार ताल के दस प्राण काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति तथा प्रस्तार।

भरत ने अंग नाम से कोई चर्चा नहीं की बल्कि इसको काल अवयव की संज्ञा दी। भरत ने जाति की जो व्याख्या की थी वह जाति काल के सन्दर्भ में भी ताल के सन्दर्भ में वही जाति को उन्होंने ताल के सन्दर्भ में ताल भेद के रूप में प्रकट किया।

ग्रह शब्द का भी भरत के नाट्यशास्त्र में ताल तत्वों के सम्बन्ध में प्रयोग नहीं किया गया है। इसके लिए भारत द्वारा पाणि शब्द प्रयोग किया गया। प्रस्तार का भी उल्लेख भरत ने नहीं किया वरन दो मूल मार्गी तालें चच्चपुट तथा चाचपुट के अंगों का मंजन कर नई तालों की उत्पत्ति माना है।

मध्यकाल के ग्रन्थ संगीत दर्पण, संगीत परिजात में भी उन्हीं ताल के दस प्राणों का उल्लेख किया गया जो कि संगीत मकरद के ताल के दस प्राण हैं तथा वर्तमान में भी ये ही दस प्राण मान्य हैं जिनकी व्याख्या आगे की जाएगी।

3.4 काल

संगीत में काल को निश्चित करने के लिए ताल की रचना की। जिस प्रकार असीमित काल को सेंकेड, मिनिट, घण्टा, दिन, सप्ताह, माह व वर्ष निश्चित किया उसी प्रकार संगीत में ताल का मुख्य प्रयोज्य काल को व्यवस्थित कर संगीत को स्थायित्व प्रदान करना था। अतः ताल रचना में काल मुख्य एवं अनिवार्य तत्व है। सभी ग्रन्थों में ताल के दस प्राण में काल का क्रम पहला है। काल गणना हेतु 425 पक्षियों की ध्वनि का भी सहारा लिया गया। काल गणना के लिए क्षण, लव, काष्ठा, निमेष, कला, अुणद्रुत, दुत, लघु, गुरू, तथा प्लुत का आधार लिया तथा तालों हेतु इनसे मात्रा तथा मात्रांश का निर्धारण हुआ। 425 पक्षियों की आवाज से निम्न प्रकार काल निर्धारण किया:–

नेवला की आवाज	–	1/2 मात्रा	द्रुत
नीलकण्ठ की आवाज	–	1 मात्रा	लघु
कौए की आवाज	–	2 मात्रा	गुरू
मयूर की आवाज	–	3 मात्रा	प्लुत

संगीत दामोदर ग्रन्थ में काल निर्णय श्री कृष्ण की बंशी की ध्वनि से किया है जिसके अनुसार कृष्ण जब अपनी बंशी की ध्वनि से राधा को पुकारते थे तो उसका काल प्लुत अथवा तीन मात्रा का होता था। इसके अतिरिक्त कृष्ण की बंशी द्रुत, लघु तथा गुरू के लिए निश्चित थी। द्रुत हेतु पारिजात बंशी, लघु हेतु कनकरेखा बंशी तथा गुरू हेत शशिकला बंशी थी।

समयसार ग्रन्थ में उल्लेख है कि 100 कमलपत्रों को एक के ऊपर एक रखकर सुई से छेद करने का काल एक क्षण है। क्षण का काल निश्चित होने पर अन्य का अनुपात काल निम्न प्रकार हैः–

8 क्षण	–	1 लव
8 लव	–	1 काष्ठा
8 काष्ठा	–	1 निमेष
8 निमेष	–	1 कला
2 कला	–	1 त्रुटि अथवा अणुद्रुत
2 अणुद्रुत	–	1 द्रुत
2 द्रुत	–	1 लघु
2 लघु	–	1 गुरू
3 लघु	–	1 प्लुत
4 लघु	–	1 काकपद

द्रुत, लघु अथवा गुरू में से किसी को भी काल अवधि अपनी क्षमता के आधार पर निश्चित करने से अन्य की उसी अनुपात में काल अवधि निश्चित हो जाएगी। लघु का मान एक मात्रा का माना गया है इसमें वैज्ञानिक आधार लेते हुए एक मात्रा का काल यदि एक सैकेंड माना जाय तो सभी का काल निश्चित हो जाएगा, जिससे संगीत के काल के निरूपण में स्थिरता आ जाएगी। क्योंकि 100 कमलपत्रों को प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता अनुसार ही भेद पाएगा जिस कारण काल गणना में प्रामाणिकरण नहीं हो पाएगा। पांच अक्षरकाल के उच्चारण काल को 1 लघु अथवा 1 मात्रा का काल कहा गया है। इसमें भी प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता अनुसार उच्चारण कर सकता है तथा उच्चारण काल पृथक हो सकता है। अतः काल के निश्चित निर्धारण के लिए सैकेण्ड ही सबसे उचित होगा जो सर्वमान्य होगा तथा संगीत में काल निर्धारण को निश्चितता प्रदान करेगा। संगीत हेतु काल निर्धारण अणुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरू, प्लुत तथा काकपद आदि से ही किया जाता है। लघु गुरू का आधा, द्रुत लघु का आधा तथा अणुद्रुत दुत का आधा है। प्लुत लघु का तीन गुना तथा काकपद लघु का चार गुना है। अतः इनमें मात्रा में परिवर्तन के पश्चात लघु की मात्रा एक होने पर द्रुत 1/2 मात्रा, अणुद्रुत 1/4 मात्रा, गुरू की दो मात्रा, प्लुत की तीन मात्रा तथा काकपद की चार मात्रा हुई।

3.5 मार्ग

मार्ग का स्थान ताल के दस प्राण में दूसरा है। मार्ग का साधारण अर्थ रास्ता है। किसी भी मार्ग से दो स्थानों की दूरी को मापा जा सकता है उसी प्रकार ताल में मार्ग द्वारा ताल की लम्बाई का ज्ञान होता है। अर्थात ताल की एक आवृत्ति कितनी लम्बाई की है, मार्ग द्वारा इसका ज्ञान हो जाता है। निश्चित काल में कला और पात के समूह को मार्ग कहते हैं। भरत ने तीन मार्गों का उल्लेख किया है चित्त, वार्तिक तथा दक्षिण। शांरगदेव ने इन तीन मार्गों के अतिरिक्त ध्रुव मार्ग भी बताया है। मानसोल्लास ग्रन्थ में ध्रुव मार्ग को चित्रतर कहा गया है। अतः इसके अनुसार चार मार्ग स्थापित किए गए ध्रुव अथवा चित्र, चित्त, वार्तिक एवं दक्षिण। ध्रुव मार्ग का प्रयोग स्वतंत्र रूप से मार्गी तालों में नहीं होता है बल्कि मार्गों के अन्तर्गत भेद करते

समय या फिर मागधी गीति में ही इसका प्रयोग होता था। भरत के अनुसार चित्र की दो मात्रा, वार्तिक की चार मात्रा तथा दक्षिण की आठ मात्रा की कला मानी। बाद में ध्रुव मार्ग को भी सम्मिलित किया गया जिससे एक मात्रा की कला निश्चित की गई। निशब्द एवं सशब्द क्रियाओं का विश्रन्ति काल कितना होगा यह मार्ग पर ही आधारित होता है। ध्रुव मार्ग में निशब्द क्रियाऐं नहीं होती हैं अतः इसको मार्गी संगीत में प्रयोग नहीं किया गया है। चार मार्ग को आप निम्नलिखित उदाहरण से समझ सकेंगेः–

ध्रुव मार्ग	– एम मात्रा कला अथवा एकमात्रिक कला तालाघात	।
चित्र मार्ग	– दो मात्रा कला अथवा द्विमात्रा कला	× 1 2
वर्तिक मार्ग	– चार मात्रा कला अथवा चतुमात्रिक कला	× o 1 2 3 4 + 0 0 0
दक्षिण मार्ग	– आठ मात्रा कला अथवा अष्टमात्रिक कला	1 2 3 4 5 6 7 8 + 0 0 0 0 0 0 0

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि ध्रुव मार्ग एक मात्रा की कला है तथा एक मात्रा में कोई विश्रान्ति नहीं है, चित्र मार्ग में एक मात्रा में एक मात्रा का विश्राम है अतः दो मात्रा की कला है, वार्तिक मार्ग में एक मात्रा में 3 मात्रा का विश्राम है अतः चार मात्रा की कला है तथा दक्षिण में एक मात्रा में सात मात्रा का विश्राम है अतः आठमात्रा की कला है। उपर के विश्राम कला के अनुसार मार्ग से ताल की लम्बाई एवं गति भेद का भी ज्ञान होता है। चित्र मार्ग में द्रुत गति, वार्तिक में मध्य गति तथा दक्षिण में विश्राम अधिक होने पर विलम्बित अथवा धीमी गति का बोध होता है। ध्रुव मार्ग में गति, चित्र मार्ग की गति से दुगुनी होगी अतः इसको अति द्रुत कह सकते हैं। बाद के ग्रन्थों में चित्र के अन्य दो भेद चित्रतर तथा चित्रतम भेद भी बताए गए। चित्रतर ही ध्रुव है अथवा इसका आधा स्वरूप चित्रतम होगा जिसको अति–अति द्रुत गति कहा जा सकता है। चच्चत्पुट मार्गी ताल का उपरोक्त मार्गी से स्वरूप निम्न प्रकार का होगा। लघु का अक्षर काल 5 का माना गया।

चच्चत्पुट चित्रमार्ग	S	S	I	S'
अक्षर काल	**10**	**10**	**5**	**15**
मात्रा	**2**	**2**	**1**	**3**
चच्चत्पुट वार्तिक मार्ग	S	S	1	S'
अक्षर काल	**20**	**20**	**10**	**30**
मात्रा	**4**	**4**	**2**	**6**
चच्चत्पुट दक्षिण मार्ग	S	S	1	S'
अक्षर काल	**40**	**40**	**20**	**60**
मात्रा	**8**	**8**	**4**	**12**

मार्गी ताल में ध्रुव मार्ग का प्रयोग नहीं किया जाता था।

वर्तमान सन्दर्भ में जबकि विलम्बित, अतिविलम्बित, मध्य, द्रुत तथा अतिद्रुत गति का प्रयोग होने लगा है तो मार्ग के सापेक्ष दक्षिण मार्ग को अति विलम्बित, वार्तिक मार्ग को विलम्बित, चित्र मार्ग को मध्य, ध्रुव अथवा चित्र को द्रुत तथा चित्रतर एवं चित्रतम को अति द्रुत गति का कहा जा सकता है।

एकल गायन के विलम्बित ख्याल में दक्षिण मार्ग, मध्य लय की रचना में वार्तिक तथा झाला एवं तराना में ध्रुव मार्ग का प्रयोग किया जाता है।

एक ताल के ठेके को तीन मार्ग में निम्न प्रकार से प्रदर्शित करेंगेः–

एकताल ध्रुव मार्ग :–

धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धि	ना
×		0		2		0		3		4	

एकताल चित्र मार्ग :–

धिं ऽ	धिं ऽ	धा गे	तिर किट	तू ऽ	ना ऽ	क ऽ	ता ऽ	धा गे	तिर किट	धी ऽ	नाऽ
×		0		2		0		3		4	

एकताल वार्तिक मार्ग :–

धिऽऽऽ	धिंऽऽऽ	धाऽगेऽ	तिरकिट	तूऽऽऽ	नाऽऽऽ
×		0		2	
कऽऽऽ	त्ताऽऽऽ	धाऽगेऽ	तिरकिट	धीऽऽऽ	नाऽऽऽ
0		3		4	

एकताल दक्षिण मार्ग :–

धिऽऽऽऽऽऽऽ	धिंऽऽऽऽऽऽऽ	धाऽऽऽगेऽऽऽ	तिऽरऽकिऽटऽ	तूऽऽऽऽऽऽऽ	नाऽऽऽऽऽऽऽ
×		0		2	
कऽऽऽऽऽऽऽ	त्ताऽऽऽऽऽऽऽ	धाऽऽऽगेऽऽऽ	तिऽरऽकिऽटऽ	धीऽऽऽऽऽऽऽ	नाऽऽऽऽऽऽऽ
0		3		4	

प्राचीन संगीतकारों ने पहले ही गति के अतिबिलम्बित, बिलम्बित, मध्य, द्रुत एवं अतिद्रुत भेद की कल्पना कर ली थी तथा वर्तमान संगीत में इन सभी गति भेदों का प्रयोग हो रहा है।

3.6 क्रिया

वैदिक कालीन संगीत से गायन वादन साथ हाथ से ताल देने की प्रथा रही है। वाजसनेयी संहिता में हाथ से ताल देने वाले को गणक कहा है। हाथ से ताल दिखाने वाले का विशेष महत्व होता था। वीणा वादन तथा नृत्य के साथ भी हाथ से ताल देने वाले को नियुक्त किया जाता था। हाथ से ताल प्रदर्शित करने को क्रिया कहा गया। क्रिया का अर्थ सामान्य तौर पर करने से है। संगीत में काल का माप क्रिया के द्वारा ही किया जाता है। प्राचीन समय में काल को प्रकट करने के लिए घन वाद्य का भी प्रयोग किया जाता था। हाथ से ताल देने की क्रिया दो प्रकार की है सशब्द एवं निशब्द। सशब्द वे क्रिया है जिसमें ध्वनि सुनाई दे तथा निशब्द वे क्रिया है जिसमें ध्वनि सुनाई न दे। सशब्द क्रियाओं को शम्यादि तथा निशब्द क्रियाओं को आवापादि की संज्ञा दी गई। इन क्रियाओं के द्वारा ताल स्थापित की जाती थी जिससे गायक, वादक तथा नृत्यकारों को प्रस्तुती में सहायता मिलती थी। सशब्द तथा निशब्द दोनों ही क्रियाओं के संयोग से ताल प्रकट होती है। इन दोनों का काम काल विभाजन का है। मार्गी तालों के मूल स्वरूप में केवल सशब्द क्रिया ही रहती है तथा निशब्द क्रिया उसके विस्तार को प्रकट करती है।

एक सशब्द क्रिया से दूसरी सशब्द क्रिया के मध्य का समय अथवा कालमान निशब्द क्रिया के द्वारा ही प्रकट किया जाता है। अतः ताल को प्रदर्शित करने में दोनों सशब्द एवं निशब्द क्रियाओं का महत्व है। इन क्रियाओं को एक साधारण उदाहरण से भी समझा जा सकता है कि यदि किसी व्यक्ति से कोई प्रश्न पूछा जाए और वह उसका उत्तर बोलकर दे तो वह क्रिया सशब्द क्रिया होगी और यदि उसका उत्तर संकेत मात्रा से दे तो वह निशब्द क्रिया कहलाएगी।

सशब्द क्रिया – ध्वनियुक्त क्रिया सशब्द क्रिया है तथा यह चार प्रकार की होती है।

1. **शम्या** – दाहिने हाथ से ताली देना
2. **ताल** – बांए हाथ से ताली देना
3. **सन्निपात** – दोनों हाथ से ताली देना
4. **ध्रुवा** – हाथ से चुटकी बजाकर नीचे की आरे लाना।

निशब्द क्रिया – ध्वनि रहित क्रिया निशब्द क्रिया है तथा यह भी चार प्रकार की है।

1. आवाप – हाथ से उपर उठाकर अंगुलियों को सिकोड़ना
2. निष्काम – नीचे की ओर अंगुलियों को फैलाना

3. विक्षेप – उठे हाथ की अंगुलियों को फैलाकर दक्षिण की ओर गिराना।
4. प्रवेशक – अंगुलियों को झुकाकर सिकोड़ना।

सशब्द एवं निशब्द क्रियाओं के करने के ढंग को कलाविधि कहा गया है। इन क्रियाओं को प्रदर्शित करने के लिए क्रियाओं के नाम का पहला अक्षर संकेत के रूप में प्रयोग किया जाता है जो निम्न प्रकार है।

क्रिया के नाम	–	**संकेत**
शम्या	–	श अथावा शं
ताल	–	ता
सन्निपात	–	सं
आवाप	–	आ
निष्काम	–	नि
विक्षेप	–	वि
प्रवेशक	–	प्र

चच्चपुट तथा चाचपुट तथा उदघट ताल में क्रियाओं का प्रदर्शन निम्न प्रकार से होगा।

चच्चत्पुट	**चाचपुट**	**उदघट**
ऽ ऽ । ऽ′	ऽ । । ऽ	ऽ ऽ ऽ
सं श ता श	**सं रा ता श**	**नि श श**

चच्चत्पुट में क्रियाओं का क्रम सन्निपात, शम्या, ताल, शम्या का होगा, चाचपुट में क्रियाओं का क्रम सन्निपात, शम्या, ताल, शम्या का होगा तथा उदघट में क्रियाओं का क्रम निष्काम, शम्या, शम्या का होगा।

चच्चत्पुट तथा चाचपुट तालों की कला विधि एक जैसी बताई गई है। सशब्द एवं निशब्द क्रियाओं की परिपाटि वर्तमान में दक्षिण भारतीय संगीत में देखी जाती है जिसमें कलाकार प्रस्तुती के साथ से ताल देता है अथवा मंच पर बैठे कलकारों में से कोई भी हाथ से ताल देता है, अलग से हाथ से ताल देने वाले की आवश्यकता नहीं होती है। वर्तमान के उत्तर भारतीय संगीत में भी ताल को हाथ से प्रदर्शित करने के लिए सशब्द एवं निशब्द क्रिया की जाती है। ताल में सम एवं ताली सशब्द क्रिया तथा खाली निशब्द क्रिया होती है। भातखण्डे लिपि पद्धति में सम को + ताली को अंक तथा खाली को 0 संकेत से प्रकट करते हैं।

3.7 अंग

काल प्राण के अर्न्तगत काल खण्डों की चर्चा की गई है। सूक्ष्म काल खण्ड, कला, काष्ठा, निमेष आदि के संयोग से अंग की रचना होती है। भरत ने मार्गी तालों के उपयोग लिए तीन अंग लघु, गुरू तथा प्लुत ही उपयोगी बताए हैं। दो या दो से अधिक अंगों के संयोग से ताल की रचना होती है। मार्गी ताल चच्च्त्पुट ऽ ऽ । ऽ′ की रचना लघु गुरू प्लुत के संयोग से हुई है। एक अंग से ताल की परिकल्पना नहीं की सकती है परन्तु अपवाद स्वरूप संगीत रत्नाकर में दी गई 120 ताल में से आदि ताल, करूण ताल तथा एकताली एक अंग की तालें हैं। वर्तमान में दक्षिण भारतीय संगीत की सात मूल तालों में एकताल भी एक अंग की ताल है। उत्तर भारतीय संगीत में एक अंग की कोई ताल नहीं है। भरत ने केवल लघु, गुरू तथा प्लुत अंगो का ही प्रयोग किया था परन्तु उनके बाद नन्दिकेश्वर ने अपने ग्रन्थ भरतार्णव में द्रुत, काकपद तथा विराम का प्रयोग देशी तालों में किया है। विराम का प्रयोग लघु एवं द्रुत अंग के साथ ही किया जाता है– लघु विराम एवं द्रुत विराम। विराम का स्वतंत्र रूप में कोई अस्तित्व नहीं है। बाद में अणुद्रुत का भी प्रयोग होने लगा। इन अंगों के संकेत चिन्ह तथा मात्रा की तालिका निम्न प्रकार से है।

अंग	**संकेत**	**मात्रा**
अणुद्रुत	अर्धचन्द्र	1/4
द्रुत	0 पूर्णचन्द्र	1/2

द्रुत विराम	0 अथवा 0	3/4
लघु	। (खडी रेखा)	1
लघु विराम	।	$1\frac{1}{4}$
गुरू	ऽ	2
प्लुत	ऽ′	3
काकपद	+	4

मार्गी ताल तथा देशी ताल को इन्ही अंगो से प्रकट किया जाता था। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में भी तालों को अंगों से प्रकट किया जाता है परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में तालों को प्रदर्शित करने के उपरोक्त अंगों का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि मात्रा एवं विभाागों द्वारा ताल प्रदर्शित की जाती है। जैसे तीनताल–

धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
×				2				0				3			

तीनताल को अंको के रूप में निम्न प्रकार प्रकट किया जा सकता है।

4+4+4+4	1	5	9	13
	×	2	0	13

उपरोक्त से तीनताल में चार–चार विभाग, प्रथम मात्रा पर सम, पांचवी मात्रा पर दूसरी ताली, नौवी मात्रा पर खाली तथा तैरहवीं मात्रा पर तीसरी तथा अन्तिम ताली है। तीनताल को अंग भेद के अनुसार + + + + रूप सेप्रदर्शित करेंगे। अर्थात तीनताल चार काकपद की चार अंगों की ताल है।

कुछ प्रचलित तालों को अंगों के रूप में प्रदर्शित किया जा रहा है। कर्नाटक ताल पद्धति में भी अंग द्वारा ही ताल प्रदर्शित की जाती है।

झपताल	–	ऽ ऽ′ ऽ ऽ′	गुरू प्लुत गुरू प्लुत	मात्रा	= 10
एकताल	–	ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	छः गुरू	मात्रा	= 12
रूपक	–	ऽ′ ऽ ऽ	एक प्लुत दो गुरू	मात्रा	= 7
आडाचारताल	–	ऽऽऽऽऽऽ	सात गुरू	मात्रा	= 14
दीपचन्दी	–	ऽ′ + ऽ′ +	प्लुत काकपद प्लुत काकपद	मात्रा	= 14
पंचमसवारी	–	ऽ′ + + +	प्लुत काकपद काकापद	मात्रा	= 15
कहरवा	–	+ +	दो काकपद	मात्रा	= 8

उत्तर भारतीय तालों को कर्नाटक ताल पद्धति में भी उपरोक्त विधि से लिखा जाएगा।

3.8 ग्रह

ग्रह का साधारण अर्थ ग्रहण करना अथवा पकड़ना है। ग्रह शब्द का अर्थ घर अर्थात स्थान भी है। भरत ने ग्रह के स्थान पर पाणि शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ भी ग्रहण करना ही है। संगीत में ताल का ग्रहण कब किया जाता है उसी के भेद ग्रह भेद के रूप में बताए गए। गायन, वादन तथा नृत्य में ताल को कब पकडा जाता है उसे ग्रह कहते हैं अर्थात ताल में जिस स्थान से क्रिया प्रारम्भ की जाती है उसे ग्रह कहा गया। ग्रहण करने के स्थान को ग्रह कहा गया।

ताल को गायन, वादन तथा नृत्य के साथ आरम्भ करने की दो स्थितियां हो सकती है एक साथ तथा आगे व पीछे। इन्हीं स्थितियों को सम ग्रह एव विषम ग्रह से प्रकट किया गया।

- **सम ग्रह –** गीत और ताल दोनों साथ साथ उठे।
- विषम ग्रह – गीत और ताल के आरम्भ के स्थान में अन्तर है।

विषम ग्रह दो प्रकार का होता है अतीत एव अनागत जो निम्न है :–

- अतीत ग्रह – सम के आघात के उपरान्त यदि गायन, वादन व नृत्य की क्रिया आरम्भ हो।
- अनागत – सम के आद्यात के पूर्व यदि संगीत की क्रिया आरम्भ हो।

भरत ने ग्रह के स्थान पर पाणी शब्द का प्रयोग किया था तथा उसके अनुसार इन्होंने समापाणि, अवपाणि तथा उपरिपाणी का उल्लेख किया जो क्रमशः समग्रह, अतीतग्रह तथा अनागत ग्रह हैं।

ग्रह संगीत तथा ताल की उठान अथवा आरम्भ को दर्शाता है। ताल गीत को प्रातिष्ठित करता है अतः ताल में ग्रह का विशेष महत्व है।

संगीत की रचनाओं में तथा ताल में सम वह स्थान है जहां से संगीत रचना तथा ताल आरम्भ की जाती है संगीत कलाकारों द्वारा सुन्दर ढंग से सम का प्रयोग करना ही ग्रह भेद के अन्तर्गत आता है। सामान्य रूप से समग्रह का ही प्रयोग किया जाता है परन्तु चमत्कार उत्पन्न करने के लिए विषम ग्रह का प्रयोग होता है। इसका सुन्दर प्रयोग कलाकार की क्षमता एवं कुशलता पर आधारित होता है।

शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर से समग्रह को मध्यलय, अतीतग्रह का द्रुत लय तथा अनागत ग्रह का विलम्बित लय में प्रयोग हेतु उपयुक्त बताया। संगीत को जिस ग्रह से आरम्भ करते थे उसी पर समाप्त भी किया जाता था। समग्रह में समाप्त होने पर समार्वतन, अतीत ग्रह से समाप्त होने पर अधिकावर्तन तथा अनागत ग्रह में समाप्त होने पर हीनावर्तन कहा गया है।

3.9 जाति

जाति का अर्थ विशेष पहचान, विशेषता तथा विशेष वर्ग समूह से है जो दूसरे से भिन्न हो होता है। जिस प्रकार भारतीय समाज में जाति प्रथा है उसी प्रकार तालों को भी जाति में बांटा गया। मार्गी तालों के भरत ने दो भेद किए थे – चतुरश्र एवं त्रयश्र। इनको ही बाद में जाति की संज्ञा दी गई। अतः प्राचीन मार्गी ताल की दो ही जाति चतुरश्र एवं त्रयश्र थी। चच्चत्पुट चतुरश्र की तथा चाचपुट त्रयश्र जाति की थी।

चंत	चत	पु	टः		चा	च	पु	ट
गुरू	गुरू	लघु	प्लुत		गुरू	लघु	लघु	गुरू
2	2	1	3		2	1	1	2
चतुरश्र		चतुरश्र			त्रयश्र		त्रयश्र	

चच्त्पुट ताल में दो खण्ड है। पहले खण्ड में दो गुरू मिलकर चार अक्षर अथवा चार मात्रा हो गई। दूसरे खण्ड में एक लघु और प्लुत मिलकर चार अक्षर बन गए इस प्रकार यह चतुरश्र जाति की ताल हुई। चाचपुट ताल के पहले खण्ड में गुरू एवं लघु तथा दूसरा खण्ड पहले खण्ड का प्रतिबिम्ब लघु एवं गुरू है। पहले एवं दूसरे खण्ड में क्रमशः तीन–तीन अक्षर अथवा मात्रा बन गई इस प्रकार यह त्रयश्र जाति की ताल हुई। पांच मार्गी तालों में चच्चत्पट चतुरश्र तथा अन्य चार तालें त्रयश्र जाति की थी।

शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में चतुरश्र एव त्रयश्र के अतिरिक्त खण्ड भेद का भी उल्लेख किया है। खण्ड का अर्थ तोड़ने से है अतः चतुरश्र अंग के भेद का खण्डन करके खण्ड जाति प्राप्त हुई। प्लुत को गुरू में, गुरू को लघु में तथा लघु को द्रुत में विघटित किया जाता है। अतः संगीत रत्नाकर के समय तक चतुरश्र, त्रयश्र तथा खण्ड जाति अस्तित्व में आई। बाद में चतुरश्र तथा त्रयश्र जाति के संयोग से मिश्र जाति बनी। खण्ड एवं मिश्र के संयोग से संकीर्ण जाति बनी। अतः वर्तमान में ताल की पांच जातियां चतुरश्र, त्रयश्र, खण्ड, मिश्र तथा संकीर्ण है।

संगीत दर्पण में उपरोक्त पांच जातियों के लिए मात्राओं का उल्लेख है जिसके अनुसार त्रयश्र के लिए तीन मात्रा, चतुरश्र के लिए चार मात्रा, खण्ड के लिए पांच मात्रा, मिश्र के लिए सात मात्रा तथा संकीर्ण के लिए नौ मात्रा निर्धारित की गई है। खण्ड, मिश्र, संकीर्ण, जातियां चतुरश्र तथा त्रयश्र जाति से ही बनी हैं।

चतुरश्र त्रयश्र

| | | | | | |

4 3

खण्ड —चतुरश्र का आधा भाग करके तथा इसको त्रयश्र में मिलाने से बनी ।

| | | | |

5

मिश्र— चतुरश्र एवं त्रयश्र जाति को मिलाने से बनी।

| | | | | | |

7

संकीर्ण — खण्ड एवं चतुरश्र को मिलाने बनी।

| | | | | | | | |

9

उपरोक्त पांच जातियों का भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था के साथ भी जोड दिया गया। जिसके अनुसार चतुरश्र जाति को ब्राहमण, त्रयश्र जाति को क्षत्रिय, खण्ड जाति को वैश्य, मिश्र जाति को शूद्र तथा संकीर्ण जाति को वर्ण संकर कहा गया। संगीत रत्नाकर में एला प्रबन्ध गायन की चार रिति नादावती, हंसावती, नन्दावती तथा भद्रावती वर्णित की है जो क्रमशः त्रतुरश्र, त्रयश्र, खण्ड एवं मिश्र जाति से सम्बन्धित है।

दक्षिण भारतीय संगीत की तालों का आधार उपरोक्त पांच जाति है। दक्षिण भारतीय संगीत की मूल तालें सात है तथा इनके जाति भेद से प्रत्येक की पांच तालें बनती है तथा इस प्रकार दक्षिण संगीत की 35 तालों का निर्माण होता है। लघु की काल अवधि सामान्यतः चार होती है परन्तु जातियों के लिए उसकी अवधि जाति के अनुसार बदल जाती है। अतः त्रयश्र में तीन, खण्ड में पांच, मिश्र में सात तथा संकीर्ण मे नौ हो जाती हैं। इन जातियों से विभिन्न लय भेद भी प्राप्त होते हैं जिनका उत्तर भारतीय ताल में प्रयोग होता है।

चतुरश्र — बराबर, दुगुन, चौगुन, अठगुन।
त्रयश्र — पौनी, डेढगुन, तिगुन, छःगुन।
खण्ड — सवाई गुन, चार में पांच मात्रा।
मिश्र — पौने दो गुन, चार में सात मात्रा।
संकीर्ण — सवा दो गुन, चार में नौ मात्रा।

3.10 कला

कला का समान्य किसी कार्य को भली भांति नियमानुसार करने का कौशल हैं। छन्द शास्त्रों में मात्रा को कला कहते हैं। शक्ति का आकार होने पर शिव को कलानिधि कहा जाता है। संगीत, काव्य, नाट्य, चित्र आदि की अभिव्यक्ति का माध्यम कला है। ताल के सन्दर्भ में कला प्रयोग निशब्द क्रिया, ताल का भाग तथा गुरू अंग अथवा दो मात्रा के लिए किया गया है कला का प्रयोग ताल के विभिन्न स्वरूपों की रचना में किया जाता था। सशब्द क्रिया को भरत ने पातकला कहा।

भरत द्वारा ताल के तीन भेद यथाक्षर, द्विकल तथा चतुष्कल बताए जिसका मुख्य आधार गुरू है। अतः सम्भवतः इस कारण गुरू को कला कहा गया। यथाक्षर को एकल कहा गया है। एकल का अर्थ है जिसके प्रत्येक खण्ड अथवा पादभाग में एक—एक कला हो। एकल स्वरूप में सभी क्रियाएं सशब्द होती है अतः एकल भेद में सशब्द क्रिया कला है। मार्गी ताल की सभी तालों में एकल स्वरूप में केवल सशब्द क्रिया होती है जिसमें ताल उदघट अपवाद है जिसके एकल स्वरूप में निशब्द क्रिया आरम्भ में होती है। तालों के द्विकल तथा चतुष्कल भेदों में दोनों सशब्द एवं निशब्द क्रियाऐं होती है अतः कला सशब्द एवं निशब्द दोनों क्रिया का प्रतीक है। पांच निमेष के बराबर समय से एक मात्रा तथा मात्रा के संयोग से कला बनती है। तालों के द्विकल तथा चतुष्काल भेदों में सारी कलाऐं गुरू से ही होती है। ताल के नाम में प्रयुक्त अक्षरों के

अनुसार यदि पात हो तो उसे यथाक्षर अथवा एकल, जब यह दो गुरू से युक्त होता है तो उसे द्विकल तथा चार गुरू से युक्त होने पर इसको चुतष्कल कहा जाता है। चच्चत्पुट तथा चाचपुट ताल की एकल, द्विकल तथा चतुष्कल भेद रचना विधि निम्न प्रकार से हैः–

	च	**च्च**	**त्पु**	**ट**
यथाक्षर अथवा एकल	ऽ	ऽ	।	ऽ′
प्रत्येक मात्रा को दुगनी की गई	ऽऽ	ऽऽ	।।	ऽ′ऽ′
सभी को गुरू में परिवर्तित करने पर	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽऽ
द्विकल स्वरूप	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
चुष्काल स्वरूप	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ

	चा	**च**	**पु**	**ट**
यथाक्षर काल अथवा एकल	ऽ	।	।	ऽ
प्रत्येक मत्रा को दुगना किया	ऽऽ	।।	।।	ऽऽ
सभी को गुरू में परिवर्तित किया	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ
द्विकल स्वरूप	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
चतुष्कल स्वरूप	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ

चच्चत्पुट ताल में सभी को गुरू में परिवर्तित करने के लिए दो प्लुत को तीन गुरू में परिवर्तित किया गया। उसके बाद अन्तिम मात्रा से एक गुरू लेकर उसको तीसरी मात्रा में जोड़ा गया जिससे द्विकल स्वरूप बना तथा इसको दुगुना करने पर चतुष्कल रूवरूप प्राप्त होता है। चाचपुट में भी पहले प्रत्येक मात्रा दो गुना की गई उसके पश्चात सभी को गुरू में बदला जो कि बीच की दो लघु से एक गुरू बनाकर बनी, जिससे द्विकल भेद बना तथा इसका दो गुना करने पर चतुष्कल भेद प्राप्त हुआ।

प्राचीन समय में लय गति को धीमा करने के लिए कला का प्रयोग किया जाता था। वर्तमान समय में उत्तर भारतीय ताल पद्धति में भी ताल की लम्बाई, कला भेद का प्रयोग कर बढ़ाई जाती है। वर्तमान की ख्याल गायकी में विलम्बित तथा अतिविलम्बित लय का प्रयोग किया जाता है जिसको क्रमशः सामान्य भाषा में चौबीस मात्रा की एकताल एवं अठतालिस मात्रा की एकताल कहा जाता है। इस प्रकार विलम्बित में एकताल की लम्बाई 24 मात्रा की तथा अतिविलम्बित में 48 मात्रा की हो गई। एकताल का यह स्वरूप द्विकल तथा अतिबिलम्बित का रूपरूप चतुष्कल का हो गया। एकताल के इन स्वरूपों को चित्र मार्ग एवं वार्तिक मार्ग में मार्ग प्राण के अन्तर्गत दिया गया है। वर्तमान के ताल सन्दर्भ में द्विकल, चतुष्कल शब्द का प्रयोग नहीं होता है।

3.11 लय

लय पूरे ब्रहमाण्ड में व्याप्त है तथा इसमें विकृति आने पर प्रलय आ जाती है। सूर्य का उदय तथा अस्त होना, पृथ्वी के द्वारा सूर्य की परिक्रमा जो कि गति की समानता के साथ होती है, प्रकृति में लय के उदाहरण है। मानव शरीर रचना में हृदय के स्पन्दन की समान गति एवं नाडी की समान गति शरीर को स्वस्थ्य रखती है तथा इसमें अनियमितता आने पर मनुष्य अस्वस्थ हो जाता है। नाड़ी की तथा हृदय के स्पन्दन की समान गति ही लय है जो मानव के शरीर को सन्तुलित कर उसको स्वस्थ्य रखती है।

संगीत में भी लय का महत्वपूर्ण स्थान है तथा बिना लय के संगीत हो ही नहीं सकता। जो स्थान शरीर में नाड़ी स्पन्दन का है वही स्थान संगीत में लय का है। लय को जब मात्राओं के आवर्तन में व्यवस्थित किया जाता है तो ताल का निर्माण होता है, अतः ताल का आधार भी लय है। समय की समान गति ही लय है।

संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में क्रिया के अन्त में जो विश्रान्ति अथवा विराम होता है उसको लय कहा गया है। संगीत दर्पण में पं. दामोदर द्वारा दो क्रियाओं को बीच होने वाल अन्तर काल को लय कहा है। संगीत

पारिजात में भी उक्त परिभाषा का समर्थन किया है। संगीत पारिजात तथा संगीत दर्पण में लय की व्याख्या संगीत रत्नाकर में दिए गए श्लोक के द्वारा ही की :–

क्रियान्तरविश्रान्तिलर्यः स त्रिविधोमतः।
तत्ताद्विरामकालेन द्रुतमध्यविलम्बिताः।।

विराम काल के तीन भेद द्रुत, लय, मध्य तथा विलम्बित बताए। अतः लय तीन प्रकार की द्रुत, मध्य एवं विलम्बित मानी गई। द्रुत से दुगनी विश्रान्ति वाली लय मध्य तथा मध्य से दुगनी विश्रान्ति वाली लय को विलम्बित कहा गया है। अतः इन तीनों लयों के परस्पर सम्बन्ध है। अतः किसी एक को आधार मान कर ही अन्य दो को निश्चित किया जा सकता है, स्वतन्त्र रूप से नहीं। विलम्बित तथा द्रुत लय को अति विलम्बित तथा अति–अति विबलम्बित तथा द्रुत के अति द्रुत तथा अति–अति द्रुत भेद क्रमशः ख्याल गायन शैली के विलम्बित ख्याल में तथा तराना एवं तन्त्र वाद्य पर झाला प्रस्तुत में वर्तमान में प्रयोग हो रहा है, जो कि कलाकार के कौशल पर निर्भर करता है। लय के भेद संगीत में रस तथा भाव की निष्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। द्रुत लय में रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक तथा अदभुत, मध्य लय में हास्य तथा श्रृंगार तथा विलम्बित लय में शान्त एवं करूण रस की निष्पत्ति बताई गई है। भरत ने नाट्यशास्त्र में ओद्य, अनुगत एवं तत्व को क्रमशः द्रुत, मध्य एवं विलम्बित के सापेक्ष बताया है।

संगीत में लय भेद द्रुत, मध्य एवं बिलम्बित लय के प्रयोग होते हैं तथा इन सभी के उपयुक्त प्रयोग से संगीत कार्यक्रम सफल होता है। गायन में अतिविलम्बित एवं अति अति विलम्बित करने पर गीत के शब्द स्पष्ट नहीं रह पाते क्योंकि उनको लय एवं स्वर के साथ तोड़ना पड़ता है। अति द्रुत एवं अति–अति द्रुत लय में भी गति के शब्द स्पष्ट नहीं सुने जा सकते हैं। जिससे गीत के काव्य की आत्मा के साथ अनर्थ होता है। लय इतनी ही रखी जानी चाहिए कि गीत के काव्य में स्पष्टता रहे। तराना, निरर्थ शब्दों से बना होता है अतः इसमें अति तथ अति–अति द्रुत लय का प्रयोग कर श्रोताओं की वाह–वाह लेने में कोई बुराई नहीं है। सामान्य संगीत के श्रोताओं को द्रुत लय में अधिक आनन्द आता है।

संगीत में लय का कोई प्रमाण निश्चित नहीं किया गया अर्थात विलम्बित लय कहने से यह पता नहीं चलता कि इसका समय माप का है। यदि 1 सेकेण्ड को विलम्बित लय में एक मात्रा मान लें तो इससे लय को प्रमाणित किया जा सकता है।

3.11.1 लयकारी – जैसा कि उपरोक्त बताया गया है कि द्रुत से दुगुनी विश्रान्ति वाली मध्य लय तथा मध्यलय से दुगनी विश्रान्ति लय विलम्बित लय कहलाती है। यह दुगुना करना ही लयकारी कहलाता है। अर्थात तीनताल को यदि दो गुना करेंगें तो तीनताल आठ मात्रा की होगी एवं यदि तीनताल की प्रत्येक मात्रा को चौगुना करेंगे तो तीनताल चारमात्रा की होगी, यही क्रमशः दुगुन एवं चौगुन की लयकारी कहलाएगी। दुगुन में विश्रान्ति काल आधा तथा चौगुन में विश्रान्ति काल 1/4 हो जाएगा। एक मात्रा में एक मात्रा से अधिक मात्राओं को प्रयोग करने पर लयकारी बनती है। मध्य लय विलम्बित लय की दुगुन है, द्रुत लय मध्यलय की दुगुन है एवं द्रुत लय विलम्बित लय की चौगुन की लयकारी है।

ताल के अंग लघु, गुरू, प्लुत एवं काकपद से भी लयकारी को समझा जा सकता है। लघु एक मात्रा, गुरू दो मात्रा, प्लुत तीन मात्रा तथा काकपद चार मात्रा प्रदर्शित करते हैं। अतः लघु की एक मात्रा के सापेक्ष गुरू दुगुन की, प्लुत तिगुन की तथा काकपद चौगुन की लयकारी प्रदर्शित करेंगे जो कि गुरू, प्लुत एवं काकपद को लघु में परिवर्तित करके प्राप्त होगी–

लघु	गुरू	प्लुत	काकपद
1	S (1+1)	S'(। । ।)	+ (1+1+1+1)

अतः एक मात्रा में दो मात्रा दुगुन, एक मात्रा में तीन मात्रा तिगुन एवं एक मात्रा में चार मात्रा चौगुन की लयकारी कहलाएगी। ताल की एक आवृत्ति में दुगुन दो बार, तिगुन तीन बार तथा चौगुन चार बार प्रयोग की जाएगी इसके विपरीत एक आवृत्ति की दुगुन, तिगुन एवं चौगुन में ताल की आवृत्ति के आधे भाग 1/3 एक तिहाई भाग तथा 1/4 एक चौथाई भाग में लयकारी प्रयोग होगी।

दुगुन, तिगुन, चौगुन लयकारी के अतिरिक्त भी आड़, कुआड, बिआड लयकारी का प्रयोग वर्तमान के संगीत में किया जाता है। आड़ लयकारी तिगुन की आधी अतः डेढ़ गुन की लयकारी जिसका अर्थ एक मात्रा में डेढ मात्रा है। जिसको 3/2 से प्रकट करते हैं। कुआड लयकारी सवागुन की लयकारी है अर्थात 1 मात्रा में सवा मात्रा जिसे 5/4 से प्रकट करते हैं (चार मात्रा में पांच मात्रा)। बिआड़ लयकारी पौने दो गुन की लयकारी है अर्थात एक मात्रा में पौने दो मात्रा जिसको 7/4 से प्रकट करते हैं (चार मात्रा में सात मात्रा)।

3.12 यति

यति का उल्लेख सर्वप्रथम भरत ने नाट्यशास्त्र में निम्न श्लोक के माध्यम से किया :–

लयप्रवृत्त वर्णानामक्षराणामक्षराणाम थगपि वा(च)।
नियमो या(यो) यतिः भात तु गीत वाद्यसमाश्रया।।

अर्थात वर्णों और अक्षरों में लय के लक्ष्य का बोध कराने वाला नियम यति कहलाता है। यति, गीत एवं वाद्य के आश्रित होती है।

शारंगदेव ने यति की परिभाषा निम्न श्लोक के माध्यम से की :–

'लयप्रवृत्तिनियमों यतिरित्याभिधीयते''

जिसके अनुसार लय प्रयोग के नियम को यति कहा है।

पं0 दामोदर ने भी संगीत दर्पण में संगीत रत्नाकर की परिभाषा को स्वीकारा किया तथा उसमें भी उपरोक्त संगीत रत्नाकर में दिए गए श्लोक का उदघृत किया। भरत ने तीन प्रकार की यति का उल्लेख किया स्रोतोगतो, गोपुच्छा तथा समायति। संगीत रत्नाकर में भी उक्त तीन यति का ही उल्लेख है परन्तु संगीत दर्पण में पांच यति समा, स्रोतोगता, मृदंगा, पिपिलिका तथा गोपुच्छा का उल्लेख किया गया, जिसका समर्थन बाद में संगीत पारिजात, तालदीपिका आदि ने किया गया।

अतः लय प्रयोग के नियम को यति कहते हैं और वह पांच प्रकार समा, स्रोतावता, मृदंगा, पिपिलिका तथा गोपुच्छा की होती है जिनके तीन लय भेद विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय के प्रयोग के नियम निश्चित किए गए हैं।

समायति – आरम्भ, मध्य तथा अन्त तक एक ही लय प्रयोग होने पर समायति कहलाती है। अतः आरम्भ से अन्त तक विलम्बित लय, आरम्भ से अन्त तक मध्य लय तथा आरम्भ से अन्त तक द्रुत लय का प्रयोग समायति है। इसको निम्न चित्र से प्रदर्शित कर सकते हैं।

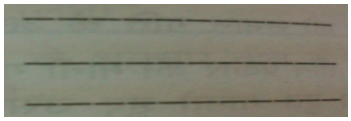

स्रोतागता – आरम्भ में विलम्बित बीच में मध्यलय तथा अन्त में द्रुत लय का प्रयोग होने पर स्रोतागता यति होती है जिसको निम्न चित्र से प्रदर्शित करेंगे।

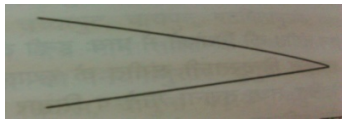

मृदंगा – इस यति का आधार मृदंगा का आकार है। जिसके अनुसार आरम्भ में द्रुत लय, बीच में विलम्बित लय तथा अन्त में फिर से द्रुत लय का अथवा आरम्भ एवं अन्त में मध्य एवं बीच में विलम्बित लय का प्रयोग होने पर मृदंगा यति होती है। इसमें केवल दो लय प्रयोग अतः आरम्भ एवं अन्त की लय के सापेक्ष मध्य भाग में यह विलम्बित होती है।

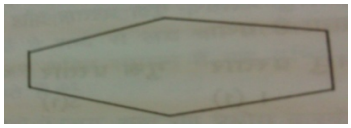

पिपिलिका – यह यति मृदंगा यति की विपरीत है तथा इस यति को चींटी से सम्बन्धित माना है। इसमें भी दो ही लय प्रयोग होती हैं। इसका आधार चीटी का आकार है जो कि आरम्भ एवं अंत का भाग मध्य भाग की अपेक्षा फैला हुआ होता है जो कि निम्न चित्र से स्पष्ट होगा। अतः आरम्भ एवं अन्त में विलम्बित या मध्य तथा मध्य स्थान में मध्य या द्रुत लय का प्रयोग होने पर पिपिलिका यति होती है।

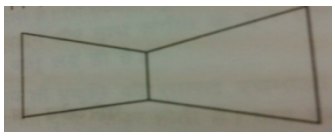

गोपुच्छा – इस यति का सम्बन्ध गोपुच्छ अथवा गाय की पूंछ के आकार से है जो कि निम्न चित्र से स्पष्ट होगा।

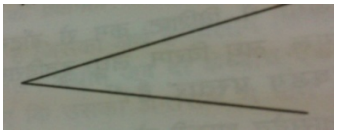

उक्त आकार के अनुसार आरम्भ में द्रुत, बीच में मध्य लय तथा अन्त में विलम्बित लय का प्रयोग होने पर यति गोपुच्छा कहलाती है तथा यह यति स्रोतगता की विपरीत है।

3.13 प्रस्तार

ताल के अंग द्रुत, लघु आदि (एक अथवा अधिक अवयवों) के आधार पर जो भेद बनते हैं उनको बनाने की विधि को प्रस्तार कहते हैं। प्लुत में द्रुत, लघु तथा गुरू को समाहित कर उनके विभिन्न संयोग से अनेक प्रकार बनते हैं इनको बनाने की विधि तथा कुल मात्रा संख्या प्रस्तार के अर्न्तगत आती है। प्लुत के उन्नीस प्रस्तार निम्न प्रकार से बनाए जाते हैं:–

1	ऽ'	
2	। ऽ	प्लुत को लघु तथा गुरू में खण्डित करके।
3	0 0 ऽ	दूसरे प्रस्तार के लघु को दो द्रुत में विभाजित कर बना।
4	ऽ ।	यह दुसरे प्रस्तार के अंग को उलट कर प्राप्त हुआ।
5	। । ।	चौथे प्रस्तार के गुरू को दो लघु में विभाजित किया।
6	0 0 ।।	इसमें पांचवे प्रस्तार के बाई ओर के लघु को दो द्रुत में विभाजित किया।
7	0 । 0।	इसमें छठे प्रस्तार के द्रुत एवं लघु का स्थान बदलने से प्राप्त किया।
8	। 0 0̇ ।	इसमें भी सातवें प्रस्तार के द्रुत एवं लघु का स्थान परिवर्तन किया।
9	0 0 0 0 ।	आठवें प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत परिवर्तित किया।
10	0 ऽ 0	नौवें प्रस्तार के अन्तिम लघु को दो द्रुत में विभाजित कर तथा बाद चार द्रुत से एक गुरू बना कर प्राप्त किया गया।
11	0 । । 0	दसवे प्रस्तार के गुरू को दो लघु में परिवर्तित कर।
12	। 0। 0	ग्यारवें प्रस्तार के लघु तथा द्रुत के स्थान परिवर्तित कर।
13	0 0 0 । 0	बारहवे प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत में विभाजित कर।
14	ऽ 0 0	तेरहवें प्रस्तार के लघु को दो द्रुत में विभाजित करने पर छः द्रुत

		प्राप्त हुए जिससे पहले चार द्रुत को एक गुरू में परिवर्तित किया तथा बाद में दो द्रुत बचे।
15	। । 00	चौदहवें प्रस्तार के पहले गुरू को दो लघु में विभाजित किया।
16	00 ।00	पन्द्रहवें प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत में विभाजित किया।
17	0 । 0 0 0	सोलहवे प्रस्तार के तीसरे स्थान के लघु को दूसरे स्थान पर रखकर प्राप्त हुआ।
18	। 0 0 0 0	सत्रहवें प्रस्तार के दूसरे स्थान के लघु को प्रथम स्थान पर रखकर प्राप्त हुआ।
19	0 0 0 0 0 0	अठारवें प्रस्तार के लघु को दो द्रुत में विभाजित कर प्राप्त हुआ।

इस प्रकार द्रुत का एक प्रस्तार, लघु के दो प्रस्तार तथा गुरू के छः प्रस्तार बन सकते हैं।

द्रुत – 0
लघु – पहला प्रस्तार – ।
दुसरा प्रस्तार – 00
गुरू – पहला प्रकार – S
दूसरा प्रकार – ।।
तीसरा प्रकार – 00।
चौथा प्रकार – 0।0
पांचवा प्रकार – ।00
छठा प्रकार – 0000

दूसरे प्रस्तार में गुरू को लघु में विभाजित किया गया, तीसरा प्रस्तार में दूसरे प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत में विभाजित किया तथा चौथे एवं पांचवे प्रस्तार में लघु को एक–एक कर बाई ओर स्थानांतरित किया गया तथा छठा एवं अन्तिम प्रस्तार लघु को भी दो द्रुत में विभाजित किया गया इस प्रकार गुरू के छः प्रस्तार प्राप्त किए गए। अतः प्रस्तार अंगों को खण्डित कर एवं उनके विभिन्न संयोंगों से देशी ताले बनी।

वर्तमान सन्दर्भ में उपयोगिता – भारत में दो तालिपि उत्तर भारतीय तथा कर्नाटक ताल लिपि प्रचलित हैं। उत्तर भारतीय तालिपि में दस प्राण में से केवल लय, जाति, ग्रह, क्रिया तथा यति ही प्रयोग में आती है। लय संगीत के लिए आवश्यक अंग है। लय के तीन भेद विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय का प्रयोग किया जाता है तथा इसके अतिरिक्त अति विलम्बित तथा अति द्रुत का प्रयोग संगीत रचनाओं में होता है। द्रुत गति की तान, तोडे उत्तर भारतीय संगीत में रोचकता तथा आर्कषण उत्पन्न करते हैं। जाति का प्रयोग लयकारी प्रदर्शन में देखने को मिलता है। ध्रुपद, धमार गायन शैली में द्रुत गति की तानों का प्रयोग नहीं होता बल्कि संगीत रचना की लयकारी प्रस्तुत की जाती है। तबला तथा पखावज वादक वाद्य पर लयकारी का प्रदर्शन कर अपने कौशन का परिचय देते हैं। यति का प्रयोग तबला व पखावज की गत की रचनाओं मे होता है। प्रस्तार का कुछ अंश तबला के कायदे व रेले आदि के पल्टों में देखने को मिलता है। क्रिया के रूप में ताली तथा खाली का ही प्रयोग है। संगीत में वैचित्र के उद्देश्य से विषय ग्रह का प्रयोग भी किया जाता है।

कर्नाटक ताल में क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, लय, यति एवं प्रस्तार का वर्तमान में भी प्रयोग हो रहा। क्रिया कर्नाटक संगीत का मुख्य अंग है। प्रत्येक संगीत प्रस्तुती में हाथ से ताली देकर ताल दिखाना आवश्यक होता है जो कि क्रिया के अर्न्तगत आता है। ताल को अंग द्वारा ही प्रदर्शित किया जाता है। समग्रह एवं विषम ग्रह का प्रयोग इस तालिपि में है। कर्नाटक ताल पद्धति जाति पर ही आधारित है तथा जाति भेद के आधार पर सात मूल तालों से पैंतीस तालों का निर्माण किया जाता है, जो कि प्रस्तार के अन्तर्गत आता है। लय प्रत्येक संगीत का अनिवार्य अंग तथा यति का प्रयोग कलाकार अपनी क्षमता के अनुसार करता है।

अभ्यास प्रश्न

क) निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1. सशब्द क्रिया की संख्या कितनी है?
2. निशब्द क्रिया की संख्या कितनी है?
3. मार्ग कितने प्रकार के हैं?
4. संगीत रत्नाकर में दी गई एक अंग की कौन सी तालें है?
5. अणु द्रुत तथा प्लुत को किन्ह संकेत चिन्ह से प्रदर्शित किया जाता है?
6. झपताल एवं रूपक ताल को अंगों के माध्यम से प्रस्तुत करें।
7. जाति की संख्या कितनी है?
8. 7/4 लयकारी को क्या कहते हैं?

3.14 सारांश

संगीत का आधार ताल है तथा ताल के निरूपण का आधार प्राचीन संगीत शास्त्रीय द्वारा निर्धारित दस प्राण है। प्रस्तुत इकाई में आपने ताल के इन दस प्राणों का विस्तृत अध्ययन किया तथा आप ताल एवं ताल के निरूपण के सिद्धान्त को ताल के दस प्राण के माध्यम से समझ गए होंगे। ताल के दस प्राण यद्यपि प्राचीन मार्गी तथा देशी तालों के सन्दर्भ में ही प्रस्तुत किए गए परन्तु इन प्राणों के अध्ययन से वर्तमान ताल प्रकरण में दिशा निर्देश प्राप्त होता है जिससे ताल पद्धति को समर्थ किया जा सकता है। वर्तमान ताल को समझने के लिए उनके प्राचीन मूल स्वरूप को समझने की आवश्यकता है जो कि आपने इस इकाई के माध्यम से समझा है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अपनी क्षमता अनुसार ताल के नए प्रयोग तथा रचनाओं के निर्माण का प्रयास करेंगे।

3.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1. चार
2. चार
3. चार
4. आदिताल एक लघु ।, करूण ताल एक गुरू ऽ
5. अणुद्रत ◡ प्लुत ऽ'
6. झपताल ऽ ऽ' ऽ ऽ' रूपक – ऽ' ऽ ऽ
7. पांच
8. बिआड लयकारी

3.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेन, अरूण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, रायपुर, म0प्र0।
2. चौधरी, सुमद्रा, भारतीय संगीत में ताल और लय विधान।
3. स्वामी पागलदास, ताल के दस प्राण, तबला अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।

3.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मार्गी तथा देशी ताल के सन्दर्भ में काल, मार्ग, क्रिया एवं अंग की व्याख्या कीजिए।
2. लय, जाति, यति तथा प्रस्तार की वर्तमान सन्दर्भ में व्याख्या कीजिए।
3. वर्तमान सन्दर्भ में ताल के दस प्राण की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 4 – संगीत संबंधी विषयों पर निबन्ध लेखन

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 निबन्ध की व्याख्या
4.4 निबन्ध के अवयव
4.4.1 भूमिका
4.4.1.1 संगीत शिक्षा विषय की भूमिका
4.4.2 विषय वस्तु
4.4.2.1 गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा
4.4.2.2 संगीत संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा
4.4.2.3 विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा
4.4.3 उपसंहार – संगीत शिक्षा विषय पर
4.5 सारांश
4.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–220) के तृतीय सेमेमस्टर की चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाई में आप भारतीय संगीत में प्रचलित ताल के दस प्राणों का संक्षिप्त अध्ययन इससे पूर्व की इकाई में आप कर चुके हैं।

इस इकाई में निबन्ध लेखन के विषय में आपको कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत कराया जाएगा। निबन्ध लिखते समय किन–किन बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है यह भी इस इकाई में वर्णित है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निबन्ध लेखन की विधि तथा निबन्ध लेखन के अवयवों से परिचित होंगे। आप किसी भी विषय पर निबन्ध लिखने में सक्षम हो सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- निबन्ध लेखन के अवयवों का सही प्रयोग कर सकेंगे।
- अपनी लेखन शैली का विकास कर सकेंगे।
- किसी भी विषय में आप व्यवस्थित रूप से निबन्ध प्रस्तुत कर सकेंगे।

4.3 निबन्ध की व्याख्या

निबन्ध के विषय में आपने पूर्व में काफी सुना है तथा प्राथमिक कक्षाओं से ही निबन्ध लेखन का अभ्यास कराया जाता है। प्रत्येक स्तर पर निबन्ध का स्तर भी पृथक होता है। निबन्ध किसी विषय विशेष की समग्र रूप में व्यवस्थित व्याख्या है। निबन्ध में विषय से सम्बन्धित समस्त पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किए जाते हैं। अतः निबन्ध में विषय की व्याख्या का स्वरूप व्यापक हो जाता है। विषय से

सम्बन्धित पूर्व की उपलब्ध जानकारी को निबन्ध में समाहित कर उसका विश्लेषण किया जाता है और लेखक समालोचना के लिए भी स्वतंत्र रहता है। निबन्ध के माध्यम से लेखक व्याप्त भ्रान्तियों को भी दूर करने की चेष्टा करता है। इसी सन्दर्भ में निबन्ध और लेख के अन्तर को भी समझने की आवश्यकता है।

लेख प्रायः समस्या को लेकर आरम्भ किया जाता है एवं समस्या का निराकरण ही किसी लेख का मूल उद्देश्य रहता है। विद्यालय स्तर पर आपको दृश्यों का आंखों देखा वर्णन निबन्ध के रूप में लेखन का अभ्यास करवाया गया है। परन्तु विश्वविद्यालय स्तर पर निबन्ध, विषय से ही सम्बन्धित रहता है और उस विषय के बारे में आपको समस्त जानकारी और यदि आवश्यक हो तो गुण–दोष के साथ प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। लेख सामान्य विषय पर वक्तव्य रूप में रहता है। निबन्ध लेखन अभ्यास से ही आप लेख लिखने एवं शोध पत्र लिखने में भी सक्षम होते हैं। अतः निबन्ध लेखन के अभ्यास से आपकी लेखन क्षमता बढ़ती है और आप अपने विचारों को कलम के माध्यम से प्रस्तुत करने की तकनीक भी विकसित कर पाते हैं। इस इकाई में स्नातकोत्तर स्तर के विषयों के निबन्ध की लेखन विधि पर चर्चा की जाएगी।

4.4 निबन्ध के अवयव

किसी भी विषय पर निबन्ध को प्रायः निम्न भागों में बांटकर विषय की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

1. भूमिका **2. विषयवस्तु** **3. उपसंहार**

4.4.1 भूमिका – इसके अन्तर्गत विषय के बारे में जानकारी देते हुए व्याख्या के अन्तर्गत आने वाले सन्दर्भों के बारे में बताते हैं। भूमिका के माध्यम से निबन्ध का स्वरूप पता चल जाता है। व्याख्या किन–किन बिन्दुओं पर केन्द्रित होनी है इसका संक्षिप्त परिचय भी भूमिका के माध्यम से दिया जाता है। भूमिका में विषय प्रवेश प्रस्तुत किया जाता है अर्थात विषय क्या है एवं विषय पर निबन्ध के माध्यम से हम विषय के सन्दर्भ में क्या–क्या चर्चा करेंगे।

उदाहरण के रूप में संगीत शिक्षा विषय के माध्यम से आपको निबन्ध की लेखन शैली से परिचित कराएंगे।

4.4.1.1 संगीत शिक्षा विषय पर भूमिका – प्राचीन काल से ही संगीत का सन्दर्भ हमें सामवेद से प्राप्त होता है तथा वैदिक समय में ऋचाओं के गान की शिक्षा गुरूमुख से देने की परम्परा थी और इस परम्परा का निर्वाह काफी समय तक रहा। संगीत का वास्तविक स्वरूप क्रियात्मक है। अतः इसकी शिक्षा भी क्रियात्मक रूप में देने से ही संगीत का स्वरूप स्पष्ट हो पाता है। यद्यपि संगीत से सम्बन्धित अवयवों की व्याख्या समय–समय पर विभिन्न संगीत मनीषियों के द्वारा दी जाती रही है परन्तु संगीत को क्रियात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करने के लिए शिष्य को गुरूमुख से ही शिक्षा ग्रहण करना होती थी जिसके लिए गुरूकुल की व्यवस्था रहती थी। वर्तमान में संगीत शिक्षा का स्वरूप बदल चुका है जिसकी चर्चा आगे की जाएगी। संगीत को विषय के रूप में समझा जाने लगा है जिससे उसकी शिक्षा भी उसी के अनुरूप होने लगी है। जबकि संगीत को कला के रूप में ही समझने की आवश्यकता है। वर्तमान में संगीत हेतु शिक्षा के विभिन्न माध्यमों का अध्ययन कर उनके गुण दोष पर इस निबन्ध के माध्यम से विचार किया जाएगा।

संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध की भूमिका उदाहरण स्वरूप आपके लिए प्रस्तुत की गई है जिससे आप किसी भी विषय पर निबन्ध हेतु भूमिका लिखने में सक्षम हो पाएंगे।

4.4.2 विषयवस्तु – भूमिका के पश्चात निबन्ध के विषय की विषय वस्तु प्रस्तुत की जाती है जिसमें विषय से सम्बन्धित सभी सन्दर्भों को प्रस्तुत किया जाता है। किसी विषय पर विषयवस्तु किस प्रकार लिखी जाती है इसका ज्ञान संगीत शिक्षा विषय पर उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत विषयवस्तु से जान सकेंगे। **संगीत शिक्षा विषय की विषयवस्तु** – पहले संगीत की शिक्षा गुरूमुख से ही प्राप्त की जाती थी। परन्तु बाद में संगीत शिक्षा के नए स्वरूप भी स्थापित हुए। संगीत शिक्षा स्वरूप निम्न प्रकार हैः–

1. गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा।
2. संगीत संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा।
3. विद्यालयों एव विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत शिक्षा।

4.4.2.1 गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा – संगीत की शिक्षा शिष्य द्वारा गुरू के पास रहकर ही प्राप्त की जाती थी। इस शिक्षा पद्धति में शिष्य को अनुशासित होकर शिक्षा प्राप्त करनी होती थी। गुरू द्वारा शिष्य की लगन, धैर्य आदि को परखकर शिष्य को स्वीकार किया जाता था। गुरू द्वारा शिष्य को स्वीकार करने के पश्चात शिष्यत्व की औपचारिक घोषणा 'गंडा रस्म' अदायगी के साथ होती थी। इसमें गुरू और शिष्य एक दूसरे को 'धागा' बाँधकर प्रतिबद्धता का संकल्प लेते थे। इस प्रकार की शिक्षा में कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होता था और न ही संगीत शिक्षा की समयावधि निश्चित होती थी। गुरू द्वारा शिष्य की क्षमता के आधार पर ही शिक्षा दी जाती थी। एक ही गुरू के कई शिष्य होते थे। परन्तु यह आवश्यक नहीं था कि सबको एक ही शिक्षा दी जाए। दी हुई संगीत शिक्षा का अभ्यास भी गुरू के निर्देशन में ही होता था। संगीत शिक्षा के अतिरिक्त संगीत सुनने का मार्ग निर्देशन का उद्देश्य यह था कि शिष्य अपना विवेक एवं धैर्य न खो बैठे। इस प्रकार की शिक्षा में धैर्य का बहुत महत्व था और लगन से गुरू द्वारा दिए गए अभ्यास के नियमों से कठिन अभ्यास करने की आवश्यकता होती थी। गुरू जब तक शिष्य को कार्यक्रम प्रस्तुत करने के अनुकूल नहीं समझता था तब तक शिष्यों को कार्यक्रम प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं होती थी। बल्कि शिष्य को कार्यक्रम के योग्य समझने के पश्चात शिष्य को संगीतकारों के मध्य प्रस्तुत किया जाता था जिससे वह सभी संगीतज्ञों का आशीर्वाद प्राप्त करें। इस प्रकार की संगीत शिक्षा में शिष्य, गुरू के सानिध्य में संगीत के गूढ़ रहस्यों को जानता था। संगीत में घराने स्थापित हुए एवं घरानों की शिक्षा इस संगीत शिक्षा पद्धति में ही सम्भव थी। शिष्य अपने गुरू के घराने से सम्बन्धित हो जाता था और उस घराने का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में अपना गौरव समझता था।

4.4.2.2 संगीत संस्थानों द्वारा संगीत शिक्षा – आधुनिक समय में संगीत संस्थानों का महत्व बढ़ गया है। पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे एवं विष्णुदिग्बर पलुस्कर ने संगीत शिक्षा का प्रचार इस प्रकार किया जिससे संगीत क्रियात्मक रूप में विकसित होने लगा। गुरूमुख शिक्षा पद्धति में बहुत कम लोग ही शिक्षा प्राप्त कर पाते थे। अतः दो संगीत मनीषियों ने संगीत के अधिक प्रचार एवं प्रसार हेतु संगीत संस्थानों की कल्पना कर पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा लखनऊ में 'मैरिस कालेज आफ म्यूजिक' एवं विष्णुदिगम्बर पलुस्कर द्वारा पूना में 'गन्धर्व मंडल' की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत देश के कई शहरों में 'गन्धर्व संगीत महाविद्यालय' के नाम से संगीत शिक्षण संस्थान खोले गए। यह संगीत शिक्षण की औपचारिक व्यवस्था का आरम्भ था। इन संस्थानों में प्रत्येक वर्ष के लिए पाठ्यक्रम निश्चित किए गए तथा वर्ष के अन्त में परीक्षा की भी व्यवस्था की गई। इन संस्थानों में संगीत के गुणीजन, गुरू अथवा उस्तादों को संगीत शिक्षा हेतु आमंत्रित किया गया और इनके लिए किसी प्रकार के औपचारिक प्रमाण–पत्रों की बाध्यता नहीं रखी गई ।

संगीत के विद्यार्थियों को परीक्षा में सफल होने पर औपचारिक प्रमाण–पत्र देने की व्यवस्था भी की गई। संगीत की हर विधा और हर अंग के लिए विशेषज्ञ रखे गए। प्रतिदिन संगीत शिक्षा का समय भी निर्धारित किया गया तथा अन्य संस्थानों की भाँति इन संस्थानों में भी उत्सव एवं त्यौहारों पर अवकाश का प्राविधान था। जबकि गुरूमुख शिक्षा पद्धति में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं रहती थी और

शिष्य को गुरू के पास रहकर ही सीखना होता था और गुरू द्वारा शिष्य को किसी समय भी शिक्षा के लिए बुला लिया जाता था जिसमें शिष्य को उपस्थित होना आवश्यक होता था। संगीत संस्थानों की शिक्षा में शिष्य गुरू के सानिध्य में निश्चित समय के लिए ही रहता है और प्राप्त की गई शिक्षा का अभ्यास स्वयं घर पर ही करता है। संगीत संस्थानों की शिक्षा पद्धति में गुरू का शिष्य के ऊपर नियंत्रण गुरूमुखी शिक्षा पद्धति की अपेक्षा कम रह पाता है। प्रारम्भ में इन संस्थानों में संगीत की शिक्षा हेतु पाँच से छः वर्षों का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया। संस्थानों में पाँच, छः वर्ष की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी यह माना गया कि इसके पश्चात भी शिष्य को गुरू के सानिध्य की निरन्तर आवश्यकता रहती है। इन दो संस्थानों की स्थापना के पश्चात प्रयाग(इलाहाबाद) में 'प्रयाग संगीत समिति' एवं पंजाब के चंडीगढ़ क्षेत्र में प्राचीन कला संगीत संस्थान की स्थापना हुई। इन सभी संस्थानों ने देश के भिन्न–भिन्न शहरों में अपने केन्द्र स्थापित किए। यद्यपि इन केन्द्रों पर शिक्षा का प्रचार हुआ एवं विद्यार्थियों को प्रमाण–पत्र मिलने लगे।

गुरूमुखी शिक्षा में गुरू एवं शिष्य दोनों का ही लक्ष्य कलाकार बनना तथा बनाना होता था जिसके लिए शिष्य द्वारा अनुशासित अभ्यास किया जाता था और संगीत ही एकमात्र लक्ष्य रहता था। संगीत संस्थानो में ऐसे भी विद्यार्थी शिक्षा लेते थे जिनका लक्ष्य केवल संगीत ही नहीं होता था बल्कि संगीत की शिक्षा शौकिया रूप में लेते थे। अतः संगीत संस्थानों में संगीत के विद्यार्थियों को समूह में एकरूपता नहीं रहती थी। गुरू द्वारा भी एक ही कक्षा के समस्त विद्यार्थियों को लगभग एक जैसी ही शिक्षा दी जाती थी जो कि संस्थानों के शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता एवं सीमा भी थी। अतः संगीत संस्थानों से शिष्य उस प्रकार की शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते थे जिस प्रकार की शिक्षा गुरू शिष्य परम्परा पद्धति में प्राप्त होती थी। संगीत संस्थानों का उद्देश्य संगीत शिक्षा के माध्यम से संगीत का प्रचार एवं प्रसार था और यह सामान्य रूप से संस्थानों के उदेद्श्य के बारे में कहा जाता था कि संस्थान तानसेन नहीं तो कानसेन तो बना ही देते हैं। अर्थात संगीत कलाकार न भी बन पाएं तो एक संगीत का अच्छा श्रोता तो बन ही जाता है। इन संगीत संस्थानों ने विभिन्न शहरों में अपने परीक्षा केन्द्र खोले जहाँ पर संगीत शिक्षा देने का भी प्रावधान किया गया तथा विद्यार्थी इन केन्द्रों से संगीत सीखकर प्रमाण–पत्र प्राप्त करने लगे। इन प्रमाण–पत्रों को सरकार के शिक्षा निदेशालय द्वारा मान्यता प्रदान की गई।

विद्यालयों में बिना इन संस्थानों के प्रमाण–पत्र के नियुक्तियाँ नहीं होती हैं। विद्यालय स्तर पर शिक्षक के लिए अन्य विषयों में बी. एड. अनिवार्य अर्हता है परन्तु संगीत विषय में शिक्षक होने के लिए बी.एड. के स्थान पर 'संगीत विशारद' एवं 'संगीत प्रभाकर' होना आवश्यक है जो कि इन संस्थानों द्वारा दिया गया प्रमाण पत्र है। इस व्यवस्था से इन केन्द्रों पर संगीत के प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों की भीड़ बढ़ गई। इन संगीत संस्थानों में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात कलाकार बनने के इच्छुक विद्यार्थियों को गुरू शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ही शिक्षा लेना अनिवार्य रहता है इन संस्थानों द्वारा सामान्य संगीत के जिज्ञासु एवं विद्यार्थियों ने संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

4.4.2.3 विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत शिक्षा – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में संगीत विषय अन्य विषयों की भाँति संगीत विषय पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में संगीत विषय का पाठ्यक्रम तैयार कर समय–सारिणी में वादन (पीरियड) शिक्षण के लिए निश्चित किया गया। इनमें शिक्षण पाठ्यक्रम के अनुसार ही दिया जाता है और अध्यापक द्वारा सब विद्यार्थियों को समान रूप से ही अध्यापन कराया जाता है। स्नातक स्तर तक एक वादन प्रायः 45 मिनट का होता है जो कि संगीत की व्यवहारिकता के अनुकूल नहीं है क्योंकि 45 मिनट के अन्दर ही वाद्यों को स्वर में करना सम्भव नहीं हो पाता है। अतः देखा जा रहा है कि विश्वविद्यालय स्तर पर भी संगीत की मूल आवश्यकता वाद्यों को स्वर में करना विद्यार्थी पूर्ण से नहीं सीख पाते हैं। स्नातक स्तर तक विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को संगीत विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी अध्ययन करना होता है। अतः विद्यार्थी संगीत के प्रति पूर्ण समर्पित नहीं

हो पाता है। संगीत की आवश्यकता होती है, जिसमें अधिक से अधिक समय देने से ही संगीत कला को समझा जा सकता है।

विद्यालय, विश्वविद्यालय में संगीत विषय प्रारम्भ होने से संगीतज्ञों को व्यवसाय तो प्राप्त हुआ परन्तु इससे संगीत शिक्षा की गुणात्मकता पर प्रभाव पड़ा। यद्यपि विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में संगीत के विद्वान भी नियुक्त हुए परन्तु इन संस्थानों की व्यवस्था में उतने समय के लिए संगीत शिक्षक भी सीमा में बँध गए। संगीत संस्थानों में गुरू परम्परा पद्धति में शिष्य पूर्ण रूप से संगीत के वातावरण में रहता था और संगीत संस्थानों में भी जितने समय के लिए वह संस्थान में है उतने समय तक वह संगीत के वातावरण में रहता था। परन्तु विद्यालय और विश्वविद्यालय में विद्यार्थी केवल संगीत के वादन (पीरियड) में ही संगीत के वातावरण से जुड़ा रहता है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों से उपाधि सामान्य रूप में मिलती है जिसमें संगीत एक विषय के रूप में रहता है जबकि संगीत संस्थानों में मिलने वाली उपाधि एवं प्रमाण पत्र केवल संगीत का ही मिलता है और गुरू–शिष्य परम्परा में तो कोई औपचारिक प्रमाण–पत्र नहीं होता है। इसमें शिष्य स्वयं अपनी शिक्षा का प्रमाण प्रस्तुत करता है। विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में संगीत विषय शिक्षा, स्नातकोत्तर उपाधि के लिए दी जाने लगी है, जिसमें केवल संगीत विषय का ही अध्ययन विद्यार्थी को करना होता है।

विश्वविद्यालय स्तर पर केवल स्नातकोत्तर कक्षाओं में ही विद्यार्थी संगीत के वातावरण में रहता है जो मात्र दो वर्ष के पाठ्यक्रम में निबद्ध होता है। संगीत की शिक्षा गुणात्मकता के साथ स्नातकोत्तर स्तर पर ही हो पाती है जिसका स्वरूप संगीत संस्थानों की शिक्षा जैसा रहता है। स्नातकोत्तर कक्षाओं में विद्यार्थियों को संगीत के अध्ययन और अभ्यास का समय प्राप्त होता है। विश्वविद्यालय स्तर पर स्नातक की कक्षाओं में संगीत विषय का विद्यार्थी सीमित समय जो कि उसके लिए समय सारिणी में निश्चित किया गया उसमें ही संगीत शिक्षक के सम्पर्क में रहता है। इसी उपलब्ध समय में शिक्षक का उद्देश्य निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करने का भी होता है। अतः गुरू शिष्य परम्परा पद्धति एवं संगीत संस्थान द्वारा शिक्षा पद्धति की तुलना में विश्वविद्यालय द्वारा दी जाने वाली संगीत शिक्षा की गुणवत्ता में कमी रहती है। स्नातकोत्तर में भी यही स्थिति रहती है परन्तु इसमें विद्यार्थी तथा शिक्षक के पास संगीत विषय के लिए अधिक समय रहता है।

संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थी विश्वविद्यालय शिक्षा के अतिरिक्त संगीत संस्थानों एवं गुरू की सहायता भी प्राप्त करते हैं। संगीत में शिक्षक बनने हेतु विश्वविद्यालय प्रमाण–पत्र की आवश्यकता होती है अतः विद्यार्थी संगीत हेतु विश्वविद्यालय में प्रवेश लेता है। केवल विश्वविद्यालय की संगीत शिक्षा से विद्यार्थी का कलाकार बनना कठिन है और न ही विश्वविद्यालय का यह उद्देश्य ही है। विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को संगीत पढ़ाने का उद्देश्य है कि विषय से सम्बन्धित आयामों से विद्यार्थी को परिचित कराया जा सके जिससे वह भविष्य के लिए अपने विकल्प चुन सके।

विश्वविद्यालय की उपाधि प्रमाण–पत्र का महत्व संगीत की शिक्षक अर्हता के रूप में ही है। व्यवसायिक कलाकार बनने में इसका कोई महत्व नहीं है। विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षक हेतु अर्हताएं एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षक हेतु अर्हताएं व्यवहारिक नहीं हैं जिससे इनमें सदैव योग्य संगीत शिक्षक नियुक्त नहीं हो पाते हैं। संगीत विषय मुख्य रूप से क्रियात्मक विषय है परन्तु नैट की परीक्षा जो कि विश्वविद्यालय में संगीत शिक्षक के लिए पास करना अनिवार्य अर्हता है। परन्तु इस परीक्षा में संगीत विषय हेतु विद्यार्थी के क्रियात्मक ज्ञान को नहीं परखा जाता है जबकि संगीत विषय के शिक्षक के लिए क्रियात्मक ज्ञान होना आवश्यक है।

अभी तक आपने संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध हेतु भूमिका एवं विषय वस्तु का अध्ययन किया जो कि निबन्ध लेखन के लिए उदाहरण स्वरूप आपको बताया गया। किसी विषय के निबन्ध पर उपसंहार लिखने के विषय में संगीत शिक्षा विषय निबन्ध पर नीचे लिखे गए उपसंहार से समझेंगे।

4.4.3 उपसंहार संगीत शिक्षा विषय पर – संगीत शिक्षा गुरू शिष्य परम्परा, संगीत संस्थानो के माध्यम से विद्यालय एवं विश्वविद्यालय में एक विषय के रूप में दी जाती है। गुरू शिष्य परम्परा में गुरू और

शिष्य के मध्य अटूट सम्बन्ध बन जाता है और शिष्य गुरू के सानिध्य में रहकर संगीत के गूढ़ रहस्यों को सीखता है। इसमें गुरू एवं शिष्य दोनों का उद्देश्य कलाकार बनाना तथा बनना होता है। संगीत संस्थानों में भी केवल संगीत शिक्षा दी जाती है जिसमें विद्यार्थी सीमित समय के लिए ही गुरू के सम्पर्क में रहता है और विश्वविद्यालय शिक्षा में स्नातक स्तर पर तो बहुत ही कम समय के लिए विद्यार्थी संगीत के वातावरण में रहता है। परन्तु संगीत शिक्षक बनने हेतु संस्थानों एवं विश्वविद्यालय में प्रमाण–पत्रों की आवश्यकता होती है।

संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि वह संस्थानों की शिक्षा अथवा विश्वविद्यालय की शिक्षा के साथ गुरू शिष्य परम्परा पद्धति में भी किसी गुरू से शिक्षा प्राप्त करे जिससे उसके पास संगीत शिक्षक का व्यवसाय अथवा व्यवसायिक कलाकार बनने का विकल्प रहेगा। उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष न निकाला जाए कि विश्वविद्यालय संगीत शिक्षा से ही अच्छा संगीत शिक्षा बन सकता है जबकि संगीत की सही शिक्षा प्राप्त ही अच्छा शिक्षक बनेगा। वर्तमान व्यवस्था में संगीत शिक्षक हेतु सभी माध्यमों का अपना महत्व है अतः विद्यार्थी को अपने निश्चित उद्देश्य के लिए इनका चयन करने की आवश्यकता है।

संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध के माध्यम से आपने निबन्ध लेखन के विषय में अध्ययन किया। कुछ अन्य संगीत सम्बन्धित विषयों की सूची दी जा रही है।

अभ्यास हेतु निबन्ध के विषय

1. फिल्मो में संगीत
2. संगीत में इलक्ट्रोनिक उपकरणों का योगदान
3. लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत
4. भक्ति एवं संगीत
5. संगीत एवं अध्यात्म
6. संगीत एवं संचार माध्यम (रेडियो व टी0वी0)
7. संगीत में अवनद्य वाद्यों की भूमिका
8. संगीत गोष्ठी

जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि प्रत्येक विषय के निबन्ध का आरम्भ भूमिका से किया जाता है और निबन्ध का समापन उपसंहार से किया जाता है। उपरोक्त विषयों की विषयवस्तु नीचे दी जा रही है जिसके आधार पर आप इन विषयों पर निबन्ध लिख सकेंगे।

1. **फिल्मों में संगीत**
   - विषयवस्तु
   - फिल्म में संगीत का प्रयोग
   - पार्श्व गायन
   - फिल्म में वाद्यों का प्रयोग
   - गायन के साथ वाद्यों का प्रयोग
   - पार्श्व संगीत में वाद्यों का प्रयोग
   - फिल्मों में संगीत का स्थान एवं उपयोगिता

2. **संगीत में इलक्ट्रोनिक उपकरणों का योगदान**
   - विषयवस्तु
   - संगीत में प्रयोग होने वाले इलक्ट्रोनिक उपकरण
     (अ) – इलक्ट्रोनिक तानपुरा
     (ब) – इलक्ट्रोनिक तबला
     (स) – इलक्ट्रोनिक लहरा मशीन
   - संगीत के संरक्षण एवं शिक्षा में सहायक इलक्ट्रोनिक उपकरण

1. ग्रामोफोन 2. टेपरिकार्डर

3. लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत

- विषयवस्तु
- लोक संगीत की पृष्ठभूमि
- शास्त्रीय संगीत का परिचय
- लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध

4. भक्ति एवं संगीत

- विषयवस्तु
- भक्ति की व्याख्या
- विभिन्न धर्मों में भक्ति हेतु संगीत का प्रयोग

1. हिन्दू 2. मुस्लिम 3. सिख 4. इसाई

5. संगीत एवं आध्यात्म

- विषयवस्तु
- संगीत की उत्पत्ति
- वैदिक कालीन संगीत
- आध्यात्म में संगीत का महत्व

6. संगीत एवं संचार माध्यम

- विषयवस्तु
- रेडियो में संगीत
- टेलीविजन में संगीत
- रेडियो तथा टेलीविजन का संगीत के प्रचार–प्रसार में भूमिका

7. संगीत में अवनद्य वाद्य की भूमिका

- विषयवस्तु
- संगीत का परिचय
- संगीत के तत्व
- संगीत के अवनद्य वाद्य
- संगीत में अवनद्य वाद्यों का प्रयोग

8. संगीत गोष्ठी

- विषयवस्तु
- संगीत गोष्ठी का परिचय
- संगीत गोष्ठी में कलाकार की भूमिका
- विभिन्न प्रकार की संगीत गोष्ठी
- संगीत गोष्ठी के श्रोता

उपरोक्त कुछ विषय आपके निबन्ध लेखन के अभ्यास के लिए दिए गए हैं। इन सभी विषयों पर आप निबन्ध लिखने का अभ्यास ऊपर अध्ययन कराई विधि के अनुसार करेंगे। सभी विषयों पर निबन्ध के अवयव का क्रम भूमिका, विषयवस्तु एवं उपसंहार रहेगा। उपसंहार एवं भूमिका के प्रभावशाली होने से आपका निबन्ध उच्चस्तर का होता है यद्यपि विषय वस्तु भी महत्वपूर्ण है। उपसंहार में विषय वस्तु में की गई चर्चाओं अथवा विवरणों से प्रकट तथ्यों को परिणाम स्वरूप में प्रस्तुत किया जाता है। आप को इन सबका ज्ञान संगीत शिक्षा विषय पर उदाहरण स्वरूप निबन्ध के माध्यम से दिया गया है। अतः उसी आधार पर आप उपरोक्त विषयों पर निबन्ध लेखन का अभ्यास करें।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निबन्ध लेखन की शैली से परिचित हो चुके होंगे। संगीत विषयों पर निबन्ध लेखन की शैली एवं विद्या से आपको इस इकाई के माध्यम से परिचित कराया गया। निबन्ध लेखन से आप अपने विचारों को लेखन के माध्यम से प्रकट करने की तकनीक विकसित करते हैं जो बाद में आपको शोधपत्र, लेख एवं शोध कार्य में सहायक सिद्ध होगी। उदाहरण स्वरूप दिए गए संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध से आप संगीत विषयों पर निबन्ध लेखन के विषय जान गए हैं एवं संगीत विषय पर लिखने में सक्षम होंगे। संगीत के गहन अध्ययन एवं संगीत के सन्दर्भों के अध्ययन से आप संगीत विषयों पर निबन्ध लिखने में सक्षम हो गए होंगे।

4.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गर्ग, श्री लक्ष्मीनारायण, *निबन्ध संगीत*, संगीत कार्यालय, हाथरस।

4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इकाई में दिए गए अभ्यास हेतु निबन्ध विषयों में से किसी एक विषय पर निबन्ध लेखन कीजिए।

इकाई 5 – पाठ्यक्रम के रागों भूपाली एवं बिलावल का परिचय, स्वर विस्तार एवं स्वर समूह के माध्यम से राग पहचानना तथा उनमें छोटा ख्याल/रज़ाखानी गत को तानों/तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना ।

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 रागों में ख्याल बंदिशों को लिपिबद्ध करना

5.3.1 राग भूपाली का परिचय एवं बंदिश

5.3.2 राग बिलावल का परिचय एवं बंदिश

5.4 राग भूपाली में रजाखानी गत को लिपिबद्ध करना

5.4.1 रजाखानी गत के तोड़ों को लिपिबद्ध करना

5.5 राग बिलावल में रजाखानी गत को लिपिबद्ध करना

5.5.1 रजाखानी गत के तोड़ों को लिपिबद्ध करना

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–220) के तृतीय सेमेमस्टर की पांचवीं इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के **संगीत संबंधी विषयों पर निबन्ध लेखन** से परिचित हो चुके होंगे।

इस इकाई में स्वरलिपि पद्धति सें बंदिशों एवं गीतों तथा **रज़ाखानी गत को तानों/तोडो** को लिपिबद्ध करना भी प्रस्तुत इकाई में सविस्तार समझाया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न रागों के स्वरूप एवं गीत रचनाओं को स्वरलिपि बद्ध कर लिखित रूप में उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- समझा सकेंगे कि स्वरलिपि पद्धति द्वारा संगीत में रागों, बंदिशों, गतों के स्वर सौन्दर्य को लिखित रूप में सर्वसुलभ बनाया जा सकता है।
- रागों में बद्ध रचनाओं को सुनकर स्वयं स्वरलिपि बद्ध करने में समर्थ हो सकेंगे। जिससे नवीन रचनाओं को समझा सकेंगे।

5.3 रागों में ख्याल बंदिशों को लिपिबद्ध करना

5.3.1 राग भूपाली का परिचय एवं बंदिश : यह राग कल्याण थाट के अन्तर्गत आता है। इसमें सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग में ग स्वर वादी तथा ध स्वर संवादी माना गया है, अतः यह पूर्वांग प्रधान राग है। इस राग का गायन समय रात्रि के प्रथम प्रहर में 7:00 से 10:00 बजे तक माना गया है। इस राग का प्राण स्वर सा तथा न्यास के स्वर सा ग प हैं। इस राग की जाति औडव है क्योंकि इसके आरोह–अवरोह में म और नि स्वर वर्जित हैं। इस राग के निकटवर्ती राग देशकार और शुद्ध कल्याण हैं। इस राग को कर्नाटकी संगीत में मोहन राग कहा जाता है। यह बहुत ही सरल एवं मधुर राग है। नए विद्यार्थियों के गले में इस राग के स्वर आसानी से आ जाते हैं इसलिए इसे राग को प्रारम्भ में सिखाया जाता है। राग भूपाली में गरे साध, सा, रेग, पग, ध प ग रेसा इस प्रकार भूपाली राग मानते हैं। इस राग की प्रकृति मधुर है। इसका आलाप सुन्दर होता है। इस राग को गाते समय राग देशकार को बचाकर गाना चाहिए।

आरोह– सा रे ग प ध सां ।

अवरोह– सां ध प ग रे सा ।

पकड़–गरे साध, सा रे ग, प ग, ध प, ग रे सा।

स्वर विस्तार

1. सा, सा रे ग परे, ग, सारेग, रेसा, साध़ सा, सारेग, प रे, ग, रे, सा सा
2. रेग, पग, रेगप, धग, पग, रेग रेसा, ध, पधध, $^{सा}$, सारेगाग, ^{प}ग, गप, गपध, ग, ^{प}ग, ^{प}रे, सा ।

3. सारेग, ध सा रे ग पग, सारे गपग, सारे ध प, सा, धसा रेग, प ग रेग– सां पग, धपग, मप, ध गप ग, गप $^{सां}$धप, गप ध सां साधपगरेसा ग, पगरेग प, गपधप गप, धसां रेरे सांध सां $^{सां}$ ध, ^{ध} प ^{प}ग प रे$^{रे}$ म रे सा ध़सा।

4. गप धप गप धपगप धसां, रेगं, गंगं रेंग रेसा, $^{रैं}$सां $^{रैं}$ध,^{ध} सां ध ध प, गरेग, रेसा,ध़सा।

5. गगरिगधसा रे ग प ध ग प ध सां सां सां धप गप धप गरे सा, धग रे, ग, सा ।

विलंबित ख्याल (एकताल)

स्थाई

गरे–रे–	साधसारे	(प)–ग–	ग–ग–	गगगरे	ग–रे–
ए ऽऽऽऽ	रीऽऽऽ	आऽऽऽ	जऽभऽ	ईलवाऽ	सुऽखऽ
4		×		0	
(प)–ग–	रे–सा–	सारे गरे	साधप–	पगधप	ग–रेसा
वाऽमोऽ	ऽऽ रेऽ	सुन सुन	पिऽयाऽ	कीऽऽऽ	बाऽऽत
2		0		3	

अन्तरा

गपधसां	सांसां–रें	सां–––	धधसारें	सांसां(सां)–	धपगरे
मोरेमन	बसऽग	इऽऽऽ	सांवरेकी	सुरतीऽ	याऽऽऽ
4		×		0	
सारेगपधप	–गरेसा	सागरेंसां	सां–ध–	सांपधपसांध	पगरेसा
देऽऽऽऽखो	ऽवेऽको	मनलल	चाऽऽऽ	ऽऽऽऽऽऽ	ऽऽऽत
2		0		3	

तान–

1. **सारेगरेगपधप गपधपगरेसा– सारेगपधसांधप गपधपगरेसा–**
2. **ध़ध़सारेगरेसा– गरेगपगरेसा– गपधपगरेसा– सांसांधपगरेसा–**

राग भूपाली – त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

रे		रे			सा		सा		ध़		ग	रे			
ग	रे	ग	रे	सा	रे	सा	ध़	–	सा	–	रे	ग	–	–	–
ज	ब	से	ऽ	तु	म	स	न	ऽ	ला	ऽ	ग	ली	ऽ	ऽ	ऽ
0				3				×				2			
प		ग		ग	प		प			सां					
ग	–	प	प	प	ध	प	ग	ग	प	ध	सां	पध	सां	धप	गरे
पी	ऽ	त	न	वे	ऽ	ली	ऽ	प्या	रे	ब	ल्मा	ऽऽ	ऽ	मोऽ	रीऽ
0				3				×				2			

अन्तरा

प		प		ग		प	सां	ध				ध			
ग	–	ग	–	प	प	सां	ध	सां	–	सां	–	सां	रें	सां	–
जो	ऽ	नै	ऽ	न	न	ना	ऽ	दे	ऽ	खो	ऽ	तो	ऽ	हे	ऽ
×				2				0				3			
	गं	रें			सां		सं	ध	सां			प	प	ग	प
सां	रें	गं	रे	सां	रें	सां	पध	सां	ध	–	प	ग	रे	ग	प
क	ल	ना	प	र	त	मो	हेऽ	च	र्चा	ऽ	क	रे	ऽ	स	ब
×				2				0				3			

प				प			
सांध	सां	पध	सां	ध	प	ग	रे
सेऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ल	रि	याँ	ऽ
×				2			

स्थायी की तान

सारे	गप	धसां	पध	सांसां	धप	गरे	सा–
×				2			
सारे	गप	धसां	रेंसां	धप	गरे	सारे	ग–
×				2			
सारे	गग	रेग	पप	गप	धप	गरे	सा–
×				2			
गग	रेग	पप	गप	पप	गप	गरे	सा–
×				2			

पप गप पग पप पप गप गरे सा–
×
2

सांसां धसां सांध सांसां पप गप गरे सा–
×
2

अन्तरे की तान

सांसा धप गरे सारे गरे गप गप धसां
0
3

सारें सांध सांसां धप गप धसां पध सां–
3

सारे गरें संसां धप गप धसां पध सां–
0
3

अभ्यास प्रश्न

---

1) लघु उत्तरीय प्रश्न :

(i) राग भूपाली में लगने वाले स्वरों का विवरण दीजिए।

2) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) राग भूपाली का गायन समय कौन सा है?

3) सत्य/असत्य बताइए :

(क) राग भूपाली का गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

4) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(i) राग भूपाली की जाति ..... है।

5.3.1 राग बिलावल का परिचय एवं बंदिश :

थाट	–	बिलावल
जाति	–	सम्पूर्ण, सम्पूर्ण
वादी, संवादी	–	धैवत, गन्धार (ध, ग)
गायन समय	–	दिन का प्रथम प्रहर
समप्रकृति राग	–	देवगिरि बिलावल, यमनी बिलावल
आरोह	–	स रे ग, म रे ग प ध, नि सां
अवरोह	–	सां नि ध, प, म ग म रे सा
पकड़	–	ग म रे ग प, $^{नि}$ध नि सां ध प।

परिचय – राग बिलावल आश्रय राग अर्थात बिलावल थाट का ही राग है। रागांग पद्धति के अनुसार समस्त बिलावल के प्रकारों में यह रागांग राग है। इस राग की गायकी में वक्र स्वर समूहों की संगति अधिक है। राग अल्हैया बिलावल उत्तरांग प्रधान राग है। राग बिलावल में मात्र कोमल निषाद का प्रयोग करके अल्हैया बिलावल राग बना है। अनेक विद्वान इस राग को अल्हैया बिलावल भी कहते हैं। बिलावल राग में भी कोमल निषाद अल्प मात्रा में प्रयोग होता है इसलिए अधिकतर विद्वान उसे अल्हैया बिलावल राग मानते हैं। भातखण्डे जी ने भी बिलावल राग में कोमल निषाद का प्रयोग किया है। इसलिए अल्हैया बिलावल राग को बिलावल ही माना जा सकता है। यह राग अत्यन्त कर्णप्रिय राग है। प्रचार में शुद्ध बिलावल और अल्हैया बिलावल अलग–अलग मानकर गाने वाले गायक बिरले ही हैं। गायक से बिलावल गाने को कहते ही वह विशेष रूप से ही अल्हैया बिलावल ही गाता है।

मुख्य स्वर समुदाय:

सा रे ग, म रे सा, सा ग रे ग प, ध प म ऽ ग, म रे ग प, ग प ध नि सां, सां ध ध प, ध ग प म ऽ ग, ग प धनि सां ध प, ध म ग, म प म ग म रे सा। ग रे ग प म ग म रे सा, प नि धनि सां ध प, ग प ध नि ध$^{नि}$ ध प ध म ग, ग प ध नि सां, ध प म ग म रे सा नि़ ध़ नि सा।

बिलावल– मध्यलय ख्याल (तीनताल)

स्थाई– रब सों नेह लगाय तु मनवा दूजो नांहि शरनवा

अन्तरा– साँचो सुखी कोऊ जग में नहि सत हर रंग मान बचनवा

स्थाई

सां	सां	ध	निप	ग	गम	प	म	ग	–	मरे	सा	सा	रे	सा	–
र	ब	सों	ऽऽ	ने	ऽऽ	ह	ल	गा	ऽ	ऽऽ	तु	म	न	वा	ऽ
0				3				x				2			
सा	–	र	मरे	ग	प	नि	नि	सां	सां	सांसां	गरें	सारें	सांनि	धप	मग
दू	ऽ	जो	ऽऽ	ना	ऽ	हिं	श	र	न	वाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
0				3				x				2			

अन्तरा

प	–	नि	नि	सं	–	सां	सां	सां	गं	गं	मं	गं	रें	सां	सां
साँ	ऽ	चो	सु	खी	ऽ	को	उ	ज	ग	मे	न	दी	ऽ	स	त
0				3				x				2			
गं	मं	पं	मंगं	मं	रें	सां	सां	नि	नि	सांसां	गरें	सारें	सांनि	धप	मग
ह	र	रं	गऽ	मा	ऽ	न	ब	च	न	वाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
0				3				x				2			

स्थाई तानें 8 मात्रा

गप	धनी	सारें	सांनी	धप	मग	मरे	सा–
x				2			
गंरे	सांनी	धनी	सांनी	धप	मग	मरे	स–
x				2			

स्थाई तानें 16 मात्रा

सारे	गम	रेग	मप	गम	धप	नीध	नीसां
0				3			
गंरे	सांनी	धप	मग	रेग	पम	गम	रेसा
x				2			
गम	रेसा	गप	नीनी	सारें	सांनी	धप	धनी
0				3			
सांनी	धप	मग	मरे	गम	पग	मरे	सासा
x				2			

अन्तरा तानें 8 मात्रा

सांनी	धप	मग	मरे	गप	नीनी	सांसां	सां–
x				2			
गप	धनी	सारें	सानी	धप	गप	धनी	सां–
x				2			

5.4. राग भूपाली में रजाखानी/द्रुत गत को लिपिबद्ध करना स्थाई (तीनताल)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
										सारे	गप	धसां	धप	गरे	सारे
										दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा
x				2				0				3			
ग	ग	साS	Sसा	सा	ध़	ध़	साS	Sसा	सा	सारे	गप	धसां	धप	गरे	सारे
दा	रा	दाS	Sर	दा	दा	रा	दाS	Sर	दा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा
x				2				0				3			

अन्तरा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
गS	गग	प	ध	सां	S	सां	सां	ध	सांसां	रें	S	सां	S	ध	प
दा	दिर	दा	रा	दा	S	दा	रा	दा	दिर	दा	S	दा	S	दा	रा
x				2				0				3			
प	धध	सां	प	धध	सां	प	ध	ग	पप	रे	ग	सा	रेरे	ध़	सा
दा	दिर	दा	दा	दिर	दा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
x				2				0				3			
ग	ग	साS	Sसा	सा	ध़	ध़	सS	Sसा	सा						
दा	रा	दाS	Sर	दा	दा	रा	दाS	Sर	दा						
x				2				0				3			

5.4.1 रजाखानी गत के तोड़ों को लिपिबद्ध करना

तोड़े–स्थाई :–

3

1. ध़सा रेग सारे गप । धसां धसां धप गरे ।
2. सारे गप धसां धसां । रेंग रेंसां धप गरे ।
3. प़ध़ सारे गग रेसा । ध़सा रेग गग रेसा ।

तोडे–अन्तराः–

0

1. गप धप गरे सारे । गप धप गरे गS ।
2. ध़सा रेग गग रेसा । सारे गप गग रेसा ।
3. सारे गसा Sरे गप । धसां धप गरे सारे ।

सम से सम तक :–

X

1. प़ध़ सारे गरे साध़ । गप धसां धप गरे ।
   पध सारें गरें सांध । धसां धप गरे सारे ।
2. सारे गप धग धप । गरे सारे ध़सा पध ।
   पध सारे गS पध । सारे गS सारे गS ।
2. प़ध़ सारे गरे सारे । सारे गप धप गरे ।
   गप धसां रेंसां धप । धप गरे गरे सार ।

5.5. राग बिलावल में रजाखानी गत को लिपिबद्ध करना :

स्थाई(तीनताल)

ग	मम	रे	ग	–	पप	ध	नि	सां	–	सां	रें	सां	निनि	ध	प
ध	निनि	सां	नि	सां	निनि	ध	प	ग	पप	म	ग	म	रेरे	सा	–
0				3				X				2			

अन्तरा

प	गग	प	ध	–	निनि	सां	नि	सां	–	ध	निनि	सां	रें	सां	–
गं	मंमं	रें	सां	–	रें	सां	निनि	ध	प	म	ग	म	रे	सा	–
0				3				X				2			

5.5.1 रजाखानी गत के तोडों को लिपिबद्ध करना :

स्थाई के तोड़े :–

1. गरे गप धनि सांनि धप मग मरे सा–
2. गप धनि सारें सांनि धप मग मरे सा–
3. धनि सारें गरें सांनि सांनि धप मग रेसा

अन्तरे के तोडे :–

1. सांनि धप मग मरे गरे गप धनि सां–
2. सांनि धनि सारें सांनि धप गप धनि सां–
3. सारें गरें गरें सांनि धप गप धनि सां–

सम से सम तक तोड़े :–

1.

मग मरे सा–, गरे गप मग मरे सा–
X
गरे गप धनि सांनि धप मग मरे सां–
2
मग मरे गप धनि सां– << मग मरे
0
गप धनि सां– ढ ढ मग मरे गम धनि सां
3 X

2.

गरे गप गप धनि धनि सारें गरें सां–
X
गरे गरें सारें सांनि धप मग मरे सा–
2
गरे गप गप धनि सां– << गरे गप
0
गप धनि सां– << गरे गप गप धनि सां
3 X

अभ्यास प्रश्न

1) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. राग बिलावल का परिचय दीजिए।

2) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. राग बिलावल में कौन सा स्वर कोमल लगता है?

3) सत्य/असत्य बताइए :

(क) राग बिलावल का गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

4) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. बिलावल का गायन समय ..... का प्रथम प्रहर है।

5.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि स्वरलिपि पद्धति के आने के बाद से संगीत सीखना, सुनना एवं सीखाना नितान्त सरल हो गया है। विशेष रूप से विद्यार्थियों को इससे बहुत सहायता प्राप्त हुई है। भातखण्डे जी ने बड़े–बड़े संगीतज्ञों द्वारा जो संगीत सीखा एवं सुना उसे स्वरलिपि पद्धति द्वारा आज लगभग 150 वर्षों से भी अधिक समय तक सुरक्षित रखा है तथा उसका गायन आज सभी संगीत विद्यार्थी कर रहे हैं। स्वरलिपि पद्धति के माध्यम से गायक–वादक तथा संगीत शिक्षक एवं छात्र–छात्राएँ उन रागों एवं गीतों को कंठस्थ करने में सक्षम हैं जिनका अध्ययन वे पहले नहीं कर पाते थे। रागों के अन्तर्गत अनेक गीत रचनाओं को गायन के साथ–साथ स्वरलिपि बद्ध करके हमेशा के लिए आप सुरक्षित रख सकेंगे। साथ ही इस इकाई में आप राग परिचय एवं उनमें लगने वाले विशिष्ट स्वर समुदायों को भी जान चुके हैं।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. उत्तर : रात्रि का प्रथम पहर

3) सत्य/असत्य बताइए :

(क) सत्य

3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. औड़व–औड़व

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, पंडित विष्णु नारायण, (1970), *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1 एवं भाग 2,* संगीत कार्यालय, हाथरस।

2. पाठक, पंडित जगदीश नारायण,(1996), *संगीत निबन्ध माला,* पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2,* पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
4. झा, पंडित रामाश्रय, (2001), *अभिनव गीतांजली भाग–IV*, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, *राग परिचय भाग 1 तथा 2,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र (1993), *मधुर स्वर लिपि संग्रह भाग 1 एवं 2,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वरलिपि पद्धति को समझाते हुए किसी एक वर्णित राग में एक ख्याल एवं एक ध्रुवपद की बंदिश को स्वरलिपि बद्ध कीजिए।

इकाई 6 – पाठ्यक्रम की तालों एकताल एवं कहरवा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वरा पहचानना तथा उनके ठेके को दुगुन एवं चौगुन लयकारी सहित लिपिबद्ध करना।

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 तालों का परिचय एवं स्वरूप

- 6.3.1 एकताल का सम्पूर्ण परिचय
- 6.3.2 कहरवा ताल का सम्पूर्ण परिचय

6.4 तालों की लयकारियाँ

- 6.4.1 एकताल की लयकारियाँ
- 6.4.2 कहरवा ताल की लयकारियाँ

6.5 सारांश

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–220) के तृतीय सेमेमस्टर की छठी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप बता सकते हैं कि स्वरलिपि पद्धति द्वारा संगीत जैसे प्रायोगिक विषय को भी लिखित रूप में किस तरह सर्वसुलभ बना दिया गया है।

प्रस्तुत इकाई में भातखण्डे जी द्वारा निर्मित ताललिपि पद्धति का पूर्ण परिचय देते हुए पाठ्यक्रम की तालों को उदाहरण स्वरूप लिपिबद्ध भी किया गया है। साथ ही तालों की लयकारियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप ताललिपि पद्धति के महत्व को समझ सकेंगे। हिन्दुस्तानी संगीत से सम्बन्धित तालों के विभिन्न तत्वों को भी जान सकेंगे। गीत रचनाओं में तालों के प्रयोग एवं उन्हें लिपिबद्ध करने की पद्धति को भी आप समझ सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

- बता सकेंगे कि ताललिपि पद्धति द्वारा किस प्रकार ताल का क्रियात्मक स्वरुप प्रस्तुत किया जा सकता है।
- ताल सम्बन्धी समस्त तत्वों को समझते हुए उनके प्रयोग सम्बन्धी नियमों को भी जान सकेंगे।
- ताल के लयकारी सम्बन्धी पक्ष को समझते हुए संगीत में इनका प्रयोग कर सकेंगे।

6.4 तालों का परिचय एवं स्वरूप

भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रमुख रुप से तालों में तीनताल, एकताल, चारताल, झपताल, धमारताल, तिलवाड़ा ताल एवं रूपक ताल का प्रयोग होता है। तीनताल एवं एकताल ख्याल गायन में सबसे प्रमुख तथा चारताल ध्रुपद गायन की सबसे प्रमुख ताल है। आप ताल सम्बन्धी सम्पूर्ण तत्वों का अध्ययन कर चुके हैं। अब आप पाठ्यक्रम से सम्बन्धित कुछ तालों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

6.4.1 एकताल का सम्पूर्ण परिचय :

मात्रा – 12, **विभाग** – 6, **ताली** – 1, 5, 9 व 11 पर तथा **खाली** – 3 व 7 पर

धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	कत	ता	धागे	तिरकिट	धी	ना
×		0		2		0		3		4	

ठेका

परिचय – एकताल में 12 मात्राएँ होती हैं। इसकी 12 मात्राएँ 6 विभागों में बटी रहती हैं। प्रत्येक विभाग 2 मात्रा का होता है। सम प्रथम स्थान, 'धिं' पर होता है। खाली के स्थान दो हैं तथा ताली के स्थान 4 हैं।

ख्याल गायन में 'विलम्बित ख्याल' के अन्तर्गत यह सबसे प्रमुख ताल है। प्रत्येक राग में अनेक बड़े ख्याल एकताल में निबद्ध होते हैं। वर्तमान में अनेक द्रुत ख्याल भी एकताल में निबद्ध हैं। कुछ वर्षों पूर्व एकताल अधिकतर 'विलम्बित ख्याल' में ही प्रयुक्त की जाती थी। एकताल का चक्र घूमता हुआ होता है, जिस प्रकार 'दादरा ताल' का ठेका घूमता हुआ होता है, क्योंकि यह 6 मात्रा की होती है। इसी प्रकार एकताल में ठीक उससे दुगुनी 12 मात्राएँ होती हैं और यह भी घूमती लय में बजती है। ख्याल गायन के क्षेत्र में यह ताल विशेष रूप से प्रयोग की जाती है। विलम्बित ख्याल में यह ताल बहुत धीमी लय में बजती है परन्तु **धागे तिरकिट** जैसे बड़े बोलों के कारण इसके भराव में आसानी हो जाती है। धीमी लय में मात्राओं को भरने के लिए यह बोल सहायता प्रदान करते हैं। ग्वालियर, आगरा, रामपुर एवं दिल्ली घराने के गायक अधिकतर इस ताल में बड़ा ख्याल गाते हैं परन्तु किराना घराने के गायक एकताल में बड़ा ख्याल गाते समय इसकी लय अतिविलम्बित कर देते हैं।

6.4.2 कहरवा ताल का सम्पूर्ण परिचय :

मात्रा – 8, **विभाग** – 2, **ताली** – 1 पर तथा **खाली** – 5 पर

ठेका

धा	गे	ना	ती	ना	क	धी	ना	धा
X				0				X

परिचय – कहरवा ताल में 8 मात्राएँ होती हैं। मात्राएँ 2 विभागों में बटी रहती हैं। प्रत्येक विभाग 4–4 मात्राओं का होता है। सम प्रथम मात्रा में 'धा' पर है। इस ताल में खाली का स्थान 1 हैं तथा ताली का स्थान भी 1 हैं।

कहरवा ताल चंचल प्रकृति का ताल है। इसका प्रयोग तबले, ढ़ोलक, नाल तथा खोल आदि वाद्यों पर किया जाता है। भाव संगीत, लोक संगीत तथा फिल्मी संगीत के साथ संगति के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें लग्गी, लड़ी तथा ठेके की किस्मों का प्रयोग होता है। कहरवा ताल सोलो वादन के उपयुक्त नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

1) लघु उत्तरीय प्रश्न :।

(i) कहरवा का स्वरुप बताइए।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) एकताल में तीसरी मात्रा पर ..... होती है।

(ख) कहरवा ताल ..... मात्रा की होती है।

3) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) कहरवा में कितनी खाली होती हैं?

(ii) एकताल किस गायन शैली में प्रयुक्त होती है?

6.5 तालों की लयकारियाँ

यदि कहा जाए कि लय के बिना संगीत संभव नहीं है तो यह कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। समय की समान गति ही लय कहलाती है। लय एवं लयकारी में अन्तर होता है। लय यदि संज्ञा है तो लयकारी क्रिया है। लय और लयकारी दोनों एक–दूसरे पर आश्रित हैं। बिना लय के लयकारी भी सम्भव नहीं है। लय ही लयकारी का आधार है। लय अनेक प्रकार की हो सकती हैं परन्तु बहुत समय पहले से ही संगीत विद्वानों ने मुख्य रूप से इसके तीन प्रकार माने हैं।

1. विलम्बित लय **2.** मध्य लय **3.** द्रुत लय

इसके अतिरिक्त देखा जाए तो अतिविलम्बित या अति द्रुत लय भी होती है परन्तु मुख्य रूप से क्रमशः यह दोनों भी विलम्बित एवं द्रुत के अन्तर्गत आ जाती हैं, इसीलिए इन तीन मुख्य लय प्रकारों को ही सर्वसम्मति से मान्यता प्राप्त है।

अब आप लयकारी को जानेंगे। लयकारी की परिभाषा हम यह दे सकते हैं कि "संगीत में लय के विभिन्न दर्जे करने की क्रिया को लयकारी कहते हैं।" लय के दर्जे करने से तात्पर्य यह है कि कलाकार जब कलात्मक दृष्टि से कभी एक मात्रा में दो, तीन या चार मात्रा तथा कभी दो में तीन, चार में पाँच मात्रा पढ़कर/दिखाकर लय के चमत्कार का प्रदर्शन करता है तो इसी को लयकारी कहते हैं।

लय के समान ही लयकारी के भी विभिन्न प्रकार माने गए हैं परन्तु इसके भी दो मुख्य प्रकार हैं।

एक सीधी लयकारी होती है जिसके अन्तर्गत दुगुन, चौगुन अठगुन आदि आते हैं। दूसरी आड़ की लयकारी होती है जिसके अन्तर्गत तिगुन, आड़, कुआड़ तथा बिआड़ आदि लयकारियाँ आती हैं।

लयकारियों के अन्तर्गत बहुत प्रकार की लयकारियाँ हो सकती हैं परन्तु पाठ्यक्रम के अनुसार आप सीधी लयकारियों को ही जान सकेंगे। विभिन्न तालों में सीधी लयकारी से सम्बन्धित दुगुन, चौगुन को आप जानेंगे। तालों में लयकारी करने से पूर्व आड़ लयकारियों के सम्बन्ध में मात्र एक परिचय जानना आवश्यक सा प्रतीत होता है। सीधी लयकारी के अतिरिक्त अन्य प्रकार की लयकारी को जिसके अन्तर्गत एक मात्रा में डेढ़ मात्रा, तीन मात्रा या सवा मात्रा आदि आते हैं, आड़ की लयकारी कहते हैं। परन्तु व्यापक दृष्टि से वर्तमान में आड़ का व्यापक अर्थ हो चुका है। आड़ का विशेष रूप से यह अर्थ है कि वह लयकारी जिसमें एक मात्रा में डेढ़ या दो मात्रा में तीन मात्रा की लयकारी हो। एक मात्रा में डेढ़ हो या 2 मात्रा में 3 बात एक ही है। इसी प्रकार कुआड़ लयकारी के अन्तर्गत एक मात्रा में सवा मात्रा या 4 मात्रा में 5 मात्रा आती हैं। यह लयकारियाँ कठिन मानी जाती हैं। आप यहाँ तालों में सीधी लयकारी करना जान सकेंगे। तालों के विषय में आप सम्पूर्ण परिचय जान चुके है अब तालों की दुगुन, चौगुन लयकारियाँ जानेंगे।

6.5.1 एकताल में लयकारियाँ :

ठेका

धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	कत	ता	धागे	तिरकिट	धी	ना	धिं
X		0		2		0		3		4		X

एकताल की दुगुनः

धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कतता	धागेतिरकिट	धीना	
X		0		2		

धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कतता	धागेतिरकिट	धीना	धिं
0		3		4		X

तीनताल के समान एकताल की दुगुन लयकारी में भी प्रत्येक दो मात्राओं को एक कर दिया जाता है तथा विभागों में मात्रा की संख्या तथा विभागों का स्वरूप एक जैसा रहता है। बस ताल का ठेका दो बार प्रयोग में लाया जाता है। एकताल की दुगुन करने के लिए दूसरे प्रकार को भी प्रयोग में लाया जाता है, जिसमें एक आवर्तन में एकताल की दुगुन की जाती है।

एक आवर्तन में एकताल की दुगुन :

धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कतता	धागेतिरकिट	धीना	धिं
X		0		2		0		3		4		X

एकताल की दुगुन 7वीं मात्रा से प्रारम्भ होगी तथा 6 मात्राओं में सम्पूर्ण होकर, दुगुन लयकारी आ जाएगी। इसमें एक आवर्तन का ही प्रयोग होगा अर्थात ठेका एक ही बार प्रयोग में आएगा।

एकताल की चौगुन लयकारी – एकताल की चौगुन के लिए चार बार ठेके की पुनरावृत्ति करनी होगी।

धिंधिंधागेतिरकिट	तूनाकतता	धागेतिरकिटधीना	धिंधिंधागेतिरकिट	
X		0		

तूनाकतता	धागेतिरकिटधीना	धिंधिंधागेतिरकिट	तूनाकतता	
2		0		

धागेतिरकिटधीना	धिंधिंधागेतिरकिट	तूनाकतता	धागेतिरकिटधीना	धिं
3		4		X

एक आवर्तन में एकताल की चौगुनः

धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	
X		0		2		

कत	ता	धागे	धिंधिंधागेतिरकिट	तूनाकतता	धागेतिरकिटधीना	धिं
0		3		4		X

एकताल की चौगुन 10वीं मात्रा से प्रारम्भ होगी तथा 3 मात्राओं में पूरी चौगुन आ जाएगी।

6.5.2 कहरवा ताल की लयकारियाँ :

ठेका

धा	गे	ना	ती	ना	क	धी	ना	धा
X				0				X

कहरवा ताल की दुगुन :

धागे	नाती	नाक	धीना	धागे	नाती	नाक	धीना	धा
X				0				X

एक आवर्तन में कहरवा ताल की दुगुन :

धा	गे	ना	ती	धागे	नाती	नाक	धीना	धा
X				0				X

कहरवा ताल की चौगुन :

धागेनाती नाकधीना धागेनाती नाकधीना	धागेनाती नाकधीना धागेनाती नाकधीना	धा
X	0	X

एक आवर्तन में कहरवा ताल की चौगुन :

धा गे ना ती	ना क धागेनाती नाकधीना	धा
X	0	X

6.6 अभ्यास प्रश्न

1) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

(i) लयकारी से आप क्या समझते है? किन्ही दो तालों की दुगुन व चौगुन लयकारी लिखिए।

2) लघु उत्तरीय प्रश्न :

(i) एकताल की चौगुन लयकारी लिखिए।
(ii) कहरवा की दुगुन लयकारी लिखिए।
(iii) लयकारी से आप क्या समझते हैं?

3) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) चौगुन लयकारी में एक मात्रा में कितनी मात्रा समाहित होती हैं?
(ii) एकताल की चौगुन कितनी मात्राओं में पूर्ण रूप से आती है?

6.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि संगीत के अभिन्न अंग व तालों की उत्पत्ति रागों की रंजकता को बढ़ाने के लिए हुई है। वर्तमान समय में उत्तरी भारत में अनेकों ताल प्रचलित हैं। जैसे – तीनताल, एकताल, चारताल, झपताल, रूपक, धमार, दीपचन्दी आदि। ताल के योग से संगीत में रसानुभूति क्षणिक न रहकर परमानन्द प्राप्ति के साधन में सहायता करती है। पहले गीत रचनाओं एवं तालों से सम्बन्धित सभी अव्यवों को कंठस्थ करना पड़ता था परन्तु तालिपि पद्धति के आने से इस क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात हो गया। संगीत के अन्तर्गत आने वाली समस्त स्वर–ताल बद्ध रचनाओं में लय एवं ताल के समस्त अंगों को समझना बेहद आसान हो गया है। गीत रचनाओं में जिस लय एवं ताल में संगत होती है उसमें समान रूप से कायम रहना परम आवश्यक है। विशेष रूप से ख्याल गायन में ताल पक्ष के लिए 'तबला' वाद्य में संगत की जाती है तथा ध्रुपद गायन में 'पखावज' वाद्य में संगत की जाती है। विभिन्न तालों की लयकारी में विभिन्न लयों के मध्यम से चमत्कार का प्रदर्शन किया जाता है। लयकारी द्वारा गीत रचनाओं एवं तालों में कुछ नवीनता आ जाती है जिससे गायन–वादन में नवीन सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। इस इकाई के अध्ययन से आप लय–ताल एवं लयकारी के सम्बन्ध में सभी तत्वों के समुचित प्रयोग को समझ सकेंगे।

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.4 की उत्तरमाला :

2) एक शब्द में उत्तर दो :

(i) उत्तर : खाली
(ii) उत्तर : 8

3)रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :

(क) उत्तर : एक **(ख)** उत्तर : ख्याल

6.5 की उत्तरमाला :

3) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) उत्तर : 4
(ii) उत्तर : तीन मात्राओं में

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, पंडित विष्णु नारायण, (1970), *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1 एवं भाग 2,* संगीत कार्यालय, हाथरस।

2. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, (1990), *राग परिचय भाग 2,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2,* पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
4. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, (1993), *तबला प्रकाश भाग–1,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, आचार्य गिरीश चन्द्र, (1994), *ताल प्रभाकर प्रश्नोत्तरी,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

2. कौर, डॉ0 भगवन्त, *परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भातखण्डे ताललिपि पद्धति का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2. एकताल एवं कहरवा ताल का सम्पूर्ण परिचय देते हुए इनकी दुगुन एवं चौगुन की लयकारियाँ लिखिए।